इस्लाम और अन्य धर्म

अर्थात्

धर्म का दार्शनिक स्वरूप

मूल उर्दू लेखन

हज़रत मौलाना मुहम्मद अली

कुर्आन शरीफ़ के विश्वविख्यात टीकाकार

हिन्दी अनुवाद

डा. खुर्शीद आलम तारीन

प्रकाशक

अहमदिय्या अंजुमन इशाअते इस्लाम(लाहौर) हिन्द,

क़लमदान पुरा, श्रीनगर, कश्मीर 190002

www.aaiil.org

अहमदिय्या सम्प्रदाय के संस्थापक हज़रत मिर्ज़ा ग़ुलाम अहमद साहिब(र.अ.) की घोषणा

"वह व्यक्ति *लानती* है जो हज़रत पैग़म्बरश्री (मुहम्मद)[सल्ल] के सिवा, उन के बाद , किसी और को *नबी* विश्वास करता है ,और उन की *ख़तमे नबूवत* को तौड़ता है।"

(अख़बार *'अल-हकम'* ,क़ादियान ,10जून 1905 ई. ,पृ. 2)

© कॉपीराइट सर्वाधिकार 2001

अहमदिय्या अंजुमन इशाते इस्लाम (लाहौर) हिन्द

क़लमदान पुरा ,श्रीनगर ,कश्मीर — 19002

अहमदिय्या अंजुमन इशाअते इस्लाम — इस अन्तर्राष्ट्रीय इस्लामी प्रचार केन्द्र की स्थापना 1914 ई. में लाहौर में हुई। इस महा प्रचार केन्द्र के नींवदाता हज़रत मिर्ज़ा गुलाम अहमद साहिब[अस] के वरिष्ठ शिष्य थे। इस प्रचार केन्द्र का एकमात्र उद्देश्य इस्लाम की वह उदार, सहिष्णु और शांतिप्रिय छवि पुनः दुनिया के सामने रखना है ,जिस का सहज चित्रण क़ुर्आन शरीफ़ और हज़रत पैग़म्बरश्री मुहम्मद[सल्ल] के परमशुभ चरित्र में विद्यमान है। इस संस्था ने अब तक संसार की अनेक प्रमुख भाषाओं में इस्लाम पर अति विपुल साहित्य प्रकाशित किया है ,जो सर्वत्र अपार श्लाघा और ख्याति प्राप्त कर चुका है।

प्रथम हिन्दी संस्करण : 2001 ई.

اسلام اور دیگر مذاهب یعنی فلسفه مذاهب

حضرت مولانا محمدعلی لاهوری علیه الرحمة

Islam Aur Digar Mazaahib yani Falsafa-e-Mazaahib

(Islam and Other Religions i.e. Philosophy of Religions)

by Hazrat Maulana Muhammad Ali "Lahori"

इस्लाम और अन्य धर्म

अर्थात्

धर्म का दार्शनिक स्वरूप

मूल उर्दू लेखन

हज़रत मौलाना मुहम्मद अली *"लाहौरी"*

हिन्दी अनुवाद

डा. खुर्शीद आलम तारीन

2001 AD

www.aaiil.org

हज़रत मौलाना मुहम्मद अली लाहौरी

सन् 1874 ई. में पंजाब (भारत) में पैदा हुए। आपका शैक्षिक रिकार्ड बडा उत्कृष्ट है। 1899 ई. में आप ने एम.ए. और लॉ की डिगरियाँ प्राप्त कीं। तत्पश्चात् वकालत का अर्थकर व्यवसाय अपनाने ही वाले थे कि उन्हें उन के आध्यात्मिक गुरु, हज़रत मिर्ज़ा गुलाम अहमद साहिब (चौदवीं सदी हिजरी के **मुजदिद** यानि इस्लामी युग सुधारक और **प्रतिज्ञात मसीहा**) ने उन्हें आदेश दिया कि वे अपना जीवन इस्लाम की सेवा के लिये समर्पित कर दें। आदेश पाते ही आप ने अपनी सारी सांसारिक योजनाएं त्याग दीं, और गुरु के चरणकमलों में क़ादियान आ बैठे। यहाँ उन्हों ने अपने गुरु से इस्लामी सत्यता संबंधी वो वो अनमोल मोती बटोरे, जो संपूर्ण आधुनिक जगत् को इस्लाम की शिक्षाओं की ओर आकर्षित करने वाले थे। बहुत जल्दी वे **सदर अंजुमन अहमदिय्या क़ादियान** के सेक्रेटरी बना दिये गए। 1901 ई. में हज़रत मिर्ज़ा साहिब ने उन्हें "Review of Religions" का संपादक नियुक्त किया,यह पत्रिका अंग्रेज़ी भाषा में इस्लाम की अग्रणी पत्रिकाओं में से एक है। इस में प्रकाशित लेखों ने थोड़े ही समय में संसार वासियों के सामने इस्लाम का सुन्दर, आकर्षक और पुरातन स्वरूप रख दिया। फलतः अनेक न्यायशील ग़ैर-मुस्लिम विद्वानों और विचारकों ने इस्लाम संबंधी अपनी परंपरागत राय बदल ली, इन में रूस के दार्शनिक टॉलस्टाय (Tolostoy) का नाम उल्लेखनीय है।

1914 ई. में हज़रत मिर्ज़ा साहिब के उत्ताधिकारी हज़रत मौलाना नूरुद्दीन का दहांत होते ही **अहमदिय्या** सम्प्रदाय में सैद्धांतिक मुद्दे को लेकर मतभेद उत्पन्न होगया। एक घुट ने अपने स्वार्थी प्रयोजनों के निमित हज़रत मिर्ज़ा साहिब को **मुजदिद**(समुद्धारक सन्त) से **नबी** बना दिया, और उनके न मानने वाले को काफ़िर और इस्लाम की परिधि से बाहर क़रार दिया। इस ग़ैर-इस्लामी हरकत पर हज़रत मौलाना मुहम्मद अली और उनके साथी क़ादियान छोड़ कर लाहौर चले आए, और विश्वविख्यात इस्लामी प्रचार केन्द्र **"अहमदिय्या अंजुमन इशाते इस्लाम लाहौर"** की स्थापना की। उस दिन से लेकर अपने देहांत (1951) तक हज़रत मौलाना मुहम्मद अली ही इस प्रचार केन्द्र के अध्यक्ष और संचालक रहे। आपके नेतृत्व में अंजुमन की शाखाएं दुनिया की चारों दिशाओं में फैल गयीं। आपका रचा उर्दू और अंग्रेज़ी इस्लामी साहित्य लोकप्रियता की चरम सीमा को प्राप्त हो चका है। आपकी क़ुर्आन शरीफ़ की उर्दू और अंग्रेजी टीका को सार्वभौम स्वीकृति प्राप्त है। आप ने इस्लाम के हर पहलू पर कलम उठाया है। आप की कृतियों की सूची अन्यत्र दरज है। आप का साहित्य पढ़कर मुसलमान पक्के मुसलमान और ग़ैरमुस्लिम इस्लाम के अति निकट आगए, बाज़ ने इस्लाम भी कबूल कर लिया। बर्तानिया के नवमुस्लिम अंग्रेज़ विद्वान व क़ुऔन के अनुवादक Marmaduke Pickthall ने हज़रत मौलाना मुहम्मद अली को ***वर्तमान युग का अद्वितीय इस्लाम-सेवी करार दिया है।***

بِسْمِ اللّٰهِ الرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ ٥

"अल्लाह के नाम से, जो अपार दयालु, सतत् कृपालु है।"

इस्लाम और अन्य धर्म

अर्थात्

धर्म का दार्शनिक स्वरुप

क़ुर्आन शरीफ़ का दावा

प्रिय श्रोताओ !

क़ुर्आन शरीफ़ की जिन आयतों को मैं ने इस वक़्त पढ़ा वे '*सूरः यासीन*' की प्रारंभिक आयतें हैं। *सूरः यासीन* को क़ुर्आन शरीफ़ का दिल कहा जाता है। इन आयतों में एक बहुत बड़ा दावा किया गया है, और मैं इस समय उसी संबंध में कुछ कहने जा रहा हूँ :

يٰسٓ ٥ وَ الْقُرْاٰنِ الْحَكِيْمِ ٥ اِنَّكَ لَمِنَ الْمُرْسَلِيْنَ ٥ عَلٰى صِرَاطٍ مُّسْتَقِيْمٍ ٥

"हे पुरुषोत्तम! तत्त्वज्ञान से परिपूर्ण क़ुर्आन साक्षी है, कि (हे मुहम्मद!) तू पैग़म्बरों में से है, बिल्कुल सीधे मार्ग पर"(36 : 1-4)।

यहाँ क़ुर्आन शरीफ़ द्वारा प्रतिपादित तत्त्वज्ञान को हज़रत पैग़म्बर-श्री (सल्ल.) की सत्यता के प्रमाण स्वरुप पेश किया गया है। यह स्वयं में कोई छोटा दावा नहीं। हज़रत पैग़म्बर-श्री (सल्ल.) के शुभ आगमन के समय अरब देश की जो दुर्दशा थी उसके रहते किसी तत्त्वज्ञान का विचार ही कल्पनातीत था। तत्त्वज्ञान तो दूर, अरब लोग तो लिखना-पढ़ना भी नहीं जानते थे,समूचा अरब देश अज्ञान के घोर अँधकार में ग्रस्त था। इन्हीं अज्ञानी लोगों के बीच हज़रत पैग़म्बर-श्री (सल्ल.) को प्रभु की ओर से

पहला आदेश यह मिलता है : اِقْرَاْ بِاسْمِ رَبِّكَ الَّذِىْ خَلَقَ ۝ خَلَقَ الْاِنْسَانَ مِنْ عَلَقٍ ۝ اِقْرَاْ وَرَبُّكَ الْاَكْرَمُ ۝ الَّذِىْ عَلَّمَ بِالْقَلَمِ ۝

"हे मुहम्मद ! पढ़, अपने पालनहार-स्रष्टा के नाम से, जिस ने पैदा किया --- मनुष्य को एक लोथड़े से पैदा किया। पढ़, और तेरा पालनहार-स्रष्टा अत्यन्त अनुग्रहशील है, जिस ने कलम द्वारा ज्ञान सिखाया"
(96 : 1-4)

इस में स्पष्ट शब्दों में कलम द्वारा सिखाने का वादा है। एक अनपढ़ जाति --- और उसी को कलम द्वारा ज्ञान सिखाना ? परन्तु यह भी कोई विशेष आश्चर्य की बात नहीं, क्योंकि मनुष्य कलम से लिखना सीख सकता है। लेकिन मामला अरब देश का था, वहाँ उस वक्त अज्ञान और अँधविश्वासों के अतिरिक्त और कुछ न था, अरबवासी बाहरी दुनिया से भी बेख़बर थे। कौन कल्पना कर सकता था कि इन्हीं में का एक निरक्षर व्यक्ति सर्वसंसार के समक्ष तत्त्वज्ञानयुक्त ग्रन्थ प्रस्तुत कर देगा ? इस ग्रन्थ को यहाँ न केवल तत्त्वज्ञानयुक्त कहा है, बल्कि कुर्आन शरीफ़ की तत्त्वज्ञानयुक्तता को हज़रत पैग़म्बर-श्री (सल्ल.) के *'रसूल'* यानि ईश्वरीय संदेष्टा होने का महा प्रमाण कहा गया है। वे चमत्कार और अलौकिक चिन्ह जो अन्य ***पैग़म्बरों*** और ***अवतारों***[1] द्वारा प्रकट हुए, कालांतर में प्रभावहीन होकर रह गए। परन्तु कुर्आन शरीफ़ का ज्ञान-प्रज्ञान से परिपूर्ण होना वह स्थाई चमत्कार है जिसकी कांति और चमक भौतिक ज्ञानविज्ञान के विकास व प्रसार से दिन पर दिन बढ़ती ही चली जाती है। क्योंकि ज्ञानविज्ञान की उन्नति पर ही तत्त्वज्ञान की उन्नति आश्रित है। आशय यह कि जितनी तरक्की ज्ञानविज्ञान में होगी उतना ही कुर्आन

---

1. ***"अवतार"*** शब्द को यों प्रतिपादित किया गया है: "He is necessarily a man w ith a message."(The Bhagavad Gita by S.Chidbhvananada,Sri Ramkrishna Misson , p.45). यही अर्थ *"रसूल और पैग़म्बर"* का है। एक और हिन्दू विद्वान ने लिखा है : " No man born is a God , whether he is Sri Krishna, Sri Rama or Jesus. They were simply the guiding human spirits of the time and hence, the ignorant man elevates them to godhead."(Remedy the Frauds in Hinduism, by Kuttikhat Purushothama Chon, Bombay, 1991AD, p.34) -- (अनुवादक)।

शरीफ का तत्त्वज्ञानयुक्त होना अधिाधिक साबित होता चलाजायेगा।

यह दावा कुर्आन शरीफ के सिर्फ एक ही स्थल पर नहीं, प्रकारांतर से यही बात अनेकशः दोहराई गयी है :

كِتَابٌ اُحْكِمَتْ اٰيٰتُهٗ ثُمَّ فُصِّلَتْ مِنْ لَّدُنْ حَكِيْمٍ خَبِيْرٍ ٥

"यह दिव्य ग्रन्थ --- जिसकी आयतें तत्त्वज्ञानयुक्त बनाई गई हैं, और फिर उन्हें सविस्तार स्पष्ट किया गया है, तत्त्वविद् सर्वज्ञाता (प्रभु) की ओर से"(11 : 1)। لَا يَاْتِيْهِ الْبَاطِلُ مِنْ بَيْنِ يَدَيْهِ وَلَا مِنْ خَلْفِهٖ تَنْزِيْلٌ مِّنْ حَكِيْمٍ حَمِيْدٍ ٥

"झूठ न इस पर इसके आगे से आ सकता है और न इसके पीछे से, (क्योंकि) यह ग्रन्थ तत्त्दर्शी महा प्रशंस्य-प्रभु ही ओर से उतारा गया है"(41 : 42)।

आगे से या पीछे से हमला करने का अर्थ क्या है ? यही कि सच्चे तत्त्वज्ञ के ग्रन्थ पर --- यदि उसका प्रतिपादित तत्त्वज्ञान यथार्थ हो --- कोई आगे से आक्रमण नहीं कर सकता अर्थात् ज्ञानविज्ञान के जितने भी प्रकार इसके सामने आयें गे वे इस पावन ग्रन्थ की तत्त्वयुक्तता को ही ज्ञापित करें गे। 'पीछे से आक्रमण' का अर्थ यह है कि दावा तो इस ग्रन्थ ने महा क्रांति का किया था परन्तु वह इस को व्यवहारिक रूप में पूर्ण न कर सका। फरमाया ऐसा कदापि न होगा, क्योंकि इस ग्रन्थ को उतारने वाला सर्वज्ञान-संपन्न परमात्मा है, जो ***स्वयं प्रशंसित*** है। यानि उसे दावा करके लज्जित नहीं होना पड़ता, उस की हर बात अक्षरशः पूरी होकर रहती है।

इसी प्रकार का दावा और भी कई स्थलों पर दृष्टिगोचर होता है, जैसे एक जगह फरमाया है, कि जिन लोगों की ओर इस कुर्आन शरीफ को भेजा गया है यह उनको भी विवेकशील और तत्त्वज्ञानी बना देगा :

هُوَ الَّذِيْ بَعَثَ فِي الْاُمِّيّٖنَ رَسُوْلًا مِّنْهُمْ يَتْلُوْا عَلَيْهِمْ اٰيٰتِهٖ وَيُزَكِّيْهِمْ وَيُعَلِّمُهُمُ الْكِتٰبَ وَالْحِكْمَةَ وَاِنْ كَانُوْا مِنْ قَبْلُ لَفِيْ ضَلٰلٍ مُّبِيْنٍ ٥

"वही है जिस ने अनपढ़ और ज्ञानशून्य लोगों के मध्य स्वयं उन्हीं में से एक ***रसूल*** भेजा, जो उनको अल्लाह की ***आयतें*** पढ़ कर सुनाता

है, और उनका अन्तःशोधन करता है, और उन्हें किताब और तत्त्वज्ञान सिखाता है,और वे इस से पहले निश्चय ही खुली गुमराही में थे"।

(62 : 2)

देखिये, यहाँ एक साथ कई दावे हैं : (क) क़ुर्आन शरीफ़ तत्त्वज्ञान से परिपूर्ण ग्रन्थ है, (ख) इसको उतारने वाला परमात्मा स्वयं भी तत्त्वदर्शी है, (ग) यह क़ुर्आन हज़रत पैग़म्बर-श्री (सल्ल.) के साथ-साथ आपके अनुयायिओं को भी विवेकशील और ज्ञानवान् बना देगा। यदि क़ुर्आन शरीफ़ के अन्दर कुछ न होता तो वह इतना बड़ा दावा हरगिज़ न करता। स्मरण रहे कि जिसके भीतर शक्ति न हो वह कदापि दावा नहीं कर सकता,अन्दर कुछ मौजूद ही हो तो इतना बड़ा दावा होता है। फिर क़ुर्आन के अन्दर यह दावा बार-बार दोहराया गया है, अर्थात् इस दावे को बड़ी दृढ़ता के साथ प्रस्तुत किया गया है। वह भी अकेले अरब देश के समक्ष ही नहीं वरन् समस्त संसार के समक्ष। देखा जाये तो यह दावा स्वयं में एक प्रबल प्रमाण है, क्योंकि इतनी दृढ़ता के साथ इसको समूची दुनिया के सामने पेश करना ही इसकी सत्यता का सबूत है।

अरब देश में ज्ञानविज्ञान या दर्शन नाम की कोई चीज़ न थी, उनका एकमात्र साहित्य उनका काव्य था। वह जाति जिस के भीतर अज्ञान ही अज्ञान भरा हो, उसी के मध्य एक अनपढ़ व्यक्ति पैदा होता है -- उस ने दुनिया की यात्रा नहीं की, कि संसार वासियों के विश्वासों, उनकी मान्यताओं की उसे जानकारी हो। उस ने कोई पुस्तक नहीं पढ़ी, न उसे कभी यह अवसर ही मिला कि वह किसी से ज्ञानविज्ञान की बातें सुनता। अतः ऐसे इन्सान के मुख से यह दावा कोई मामूली दावा नहीं --- वह तो ज्ञानविज्ञान के नाम तक से अपरिचित है। उसी के मुख से यह घोषणा कि यह ग्रन्थ परम तत्त्वज्ञानी परमात्मा की ओर से है, और जिस पर इसका अवतरण हुआ है वह इस के माध्यम से जनसाधारण को बुद्धिमत्ता और तत्त्वज्ञान सिखाता है। यह स्वयं अपने में एक बुहत बड़ी बात है, जो अपना प्रमाण आप है।

लेकिन फिर भी इस दावा को जब तक तथ्यों की कसौटी पर कस

कर परखा न जाये असल वास्तविकता पुर्णतया अभिव्यक्त नहीं हो सकती। मेरे प्रवचन का शिर्षक था ***'इस्लाम और अन्य धर्म'***, लेकिन मैं इसको बदल कर नया शिर्षक देता हूँ ***'धर्म का दार्शनिक स्वरुप'***(PHILOSOPHY OF RELIGION)। उद्देश्य केवल यह दिखाना है कि आया कुर्आन शरीफ़ ने कोई दर्शन या तत्त्वज्ञान प्रतिपादित किया भी है या नहीं, कि जिस को देख मनुष्य स्वतः विश्वास कर ले कि यह वाक्यी परम तत्त्दर्शी परमात्मा की वाणी है।

कुर्आन शरीफ़ में पूववर्ती धर्मग्रन्थों की समीक्षा

फिलहाल मैं मूल विषय का एक ही पक्ष लेता हूँ। कुर्आन शरीफ़ में आप एक अद्‌भुत बात पायें गे। संसार के समस्त धर्मग्रन्थों को पढ़ जाईये, किसी में वह बात नज़र न आयेगी। वह यह कि किसी भी धर्मग्रन्थ ने अन्य धर्मग्रन्थों से कोई संबंध नहीं रखा, और न ही उस का कभी कोई उल्लेख किया। हज़रत ईसा मसीह(अ.स.)[1] यहूदियों के बीच पैदा हुए, उन के सामने यहूदी धर्मगुरु और शास्त्रविद्‌जन थे, उनका वासता भी उन्हीं से रहा। फलतः उनके धर्मग्रन्थ में केवल उन्हीं की चर्चा मिलती है। गौतम बुद्ध का आविर्भाव भारत में हुआ, उस ने भी केवल भारतीय कुप्रथाओं का ही सुधार किया, ब्राह्मणवाद को समाप्त कर मुक्ति संबंधी अपने ही सिद्धांतों को प्रतिपादित किया। चीन देश में कन्फ्यूशस (Confucius) और ईरान में ज़रतुष्त (ZOROASTER) का प्रकटन हुआ, उनके सुधार का कार्यक्षेत्र भी स्वदेशीय ही रहा। यही दशा संसार के अन्य धर्मग्रन्थों की है। वेदों के अन्दर भी केवल सतलज और व्यास नदियों की महिमा का ही बखान है, भारत वर्ष की सीमा को लांघना घोर पाप बताया गया है। इसके विपरीत कुर्आन शरीफ़ संपूर्ण धर्म-जगत का वह एकमात्र ग्रन्थ है जिस में समस्त धर्मों की समीक्षा मौजूद है। हज़रत पैगम्बर-श्री (सल्ल.)[2] ने कब ज़रतुष्त का ग्रन्थ

1.***"अलैहिस् सलाम"*** (अथात् 'उस पर अल्लाह की शांति वर्षित हो') का संक्षिप्त रूप, पढ़ते समय पूरा वाक्य पढ़ना चाहिये। (अनुवादक)

2.***"सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम"*** (अथात् ' उन पर अल्लाह की अपार कृपा और शांति वर्षित हो') का संक्षिप्त रूप। जहां भी हज़रत पैग़म्बर-श्री मुहम्मद का पावत्र नाम आये पूरा वाक्य पढ़ना चाहिये। (अनुवादक)

पढ़ा था ? आप ने कब यहूदियों के धर्मसाहित्य का अध्ययन किया था कि यह मान लिया जाये कि इसी ज्ञानराशि के आधार पर आप ने यह सब लिख दिया होगा। तिस पर भी दुनिया में एक ही ग्रन्थ है --- कुर्आन --- जो समस्त धर्मों पर रिव्यू (-समीक्षा) करता है। खेद है कि स्वयं मुसलमानों ने भी कुर्आन के महत्त्व को नहीं जाना, उन्हों ने न वेदों को पढ़ा है, न बाइबिल को और न ही कभी अन्य थर्मों के मौलिक सिद्धांतों पर समीक्षात्मक दृष्टि डाली है, और न कुर्आन पर ही चिंतनमनन किया कि आप ही धर्मों का तुलनात्मक विवेचन कर सकें। बस यों ही घर में बैठे-बैठे बिना सोचे-विचारे एतराज़ प्रस्तुत करने केलिये तैयार हो जाते हैं। यदि वे ध्यानपूर्वक देखते तो उन्हें कुर्आन शरीफ़ में ऐसे-ऐसे प्रज्ञानयुक्त सिद्धांत नज़र आयें गे कि जिन को देख कर मनुष्य आश्चर्यचकित हो जाता है, कि अरब देश के एक अनपढ़ व्यक्ति ने किस तरह इन यथेष्ट नियमों और सिद्धांतों का प्रतिपादन किया, जिन का खंडन सम्भव ही नहीं।

सब से पहली बात जो कुर्आन शरीफ़ को अन्य धर्मग्रन्थों से प्रभिन्न करती है, यह है कि कुर्आन संसार के सभी धर्मों के असत्य सिद्धांतों की न सिर्फ चर्चा करता है बल्कि उन के बारे में न्यायसंगत फैसला भी सुनाता है, और फैसला भी ऐसा कि जिसको कभी रद्द नहीं किया जासकता। हज़रत पैग़म्बर-श्री (सल्ल.) के मस्तिष्क में यह बात किस ने रख दी कि तुम समस्त धर्मों की समीक्षा लिख कर छोड़ जाओ। क्या अरब में ऐसी परिस्थितियां विद्यमान थीं कि जिन के प्रभाव अथवा प्रेरणा से आप के भीतर यह विचार पैदा हुआ कि मैं ऐसे नियमों का निर्माण कर जाऊँ कि जिन्हें ज्ञानविज्ञान की उत्तमोत्तम प्रगति व विकास भी किसी प्रकार तौड़ न सके, रद्द न करसके। जब मैं कुर्आन शरीफ़ के एक-एक पहलु को निहारता हूँ तो मुझे उस का अंगअंग तत्वज्ञान से युक्त नज़र आता है। उदारता का पक्ष ही ले लो --- कितना सुविशाल और व्यापक है यह ! फ़रमाया कि प्रत्येक जाति और प्रत्येक राष्ट्र में अल्लाह का भेजा हुआ कोई न कोई पैग़म्बर या अवतार ज़रूर प्रकट हुआ है :

إِنْ مِّنْ أُمَّةٍ إِلَّا خَلَا فِيهَا نَذِيرٌ ۝

"कोई जाति, कोई राष्ट्र ऐसा नहीं कि जिस में प्रभु द्वारा भेजा हुआ कोई न कोई सचेतकर्ता प्रकट न हुआ हो"(35:24)।

لِكُلِّ اُمَّةٍ رَّسُوْلٌ

" प्रत्येक जाति, प्रत्येक राष्ट्र में कोई न कोई रसूल या अवतार अवश्य आया है"(10:47)।

لِكُلِّ قَوْمٍ هَادٍ

"प्रत्येक जाति, प्रत्येक राष्ट्र में कोई न कोई पथप्रदर्शक अवश्य आया है"(13:7)।

यही भाव प्रकारांतर से अनेकशः प्रदर्शित हुआ है। पर चूंकि सभी पैग़म्बरों-अवतारों के नाम बताना अत्यन्त दुष्कर कार्य था, अतः नियम के रूप में बता दिया :

وَلَقَدْ اَرْسَلْنَا رُسُلًا مِّنْ قَبْلِكَ مِنْهُمْ مَنْ قَصَصْنَا عَلَيْكَ وَمِنْهُمْ مَنْ لَمْ نَقْصُصْ عَلَيْكَ

"और निस्संदेह हम ने तुझ से पहले भी रसूल भेजे, उन में बाज़ तो वे हैं जिन की चर्चा हम ने तुझ से कर दी, और बाज़ वे हैं जिन की चर्चा हम ने तुझ से नहीं की"(40:78)।

क़ुर्आन के प्रथम श्रोता चूंकि अरब थे इस लिये अधिकतर नाम उन्ही पैग़म्बरों के लिये जो अरब के सीमांतों अथवा उसके आस-पास प्रकट हुए। पैग़म्बरों की इस चर्चा में भी तत्वज्ञान का अपूर्व प्रदर्शन है। संभवतः क़ुर्आन शरीफ़ को यह पहले से ही ज्ञात था कि संसार में गोरे और काले का अन्तर दारुण समस्या के रूप में उभरने वाला है। अतः जहाँ इस ने गोरे नबी की चर्चा की वहीं एक काले नबी का भी उल्लेख विशेष रूप से कर दिया, और सम्मान हेतु एक ***सूरत*** (अध्याय) का नाम उसी के नाम पर रख दिया अर्थात् ***'सूरः लुक़मान'***। गोरों में हज़रत ईसा (अ.स.) का उदाहरण दिया जासकता है। ***मिअराज*** वाली हदीस में हज़रत पैग़म्बर-श्री (सल्ल.) ने हज़रत ईसा का हुलया ***रजलुन अह्मर*** (=अत्यन्त गोरा पुरुष) बताया है। इधर दूसरी ओर हज़रत लुक़मान हबश देश के अत्यन्त काले पुरुष थे। क़ुर्आन शरीफ़ ने दोनों की सम्मानपूर्वक चर्चा कर वर्णवाद या

रंगभेद की समस्या का समाधान ही कर दिया।

इस्लाम का अन्य धर्मों से व्यवहार

कुर्आन ने अगर सारे पैग़म्बरों की चर्चा नहीं की , तो भी समस्त धार्मिक मतमतांतरों का उल्लेख उसने अवश्य कर दिया, और बता दिया कि इन में यह-यह गलती है, और यह-यह बात सही है। परन्तु एक ऐसी समीक्षा में, कि जिस का संबंध दोसरों की समालोचना से हो, न्याय और संतुलन बनाये रखना बड़ा ही कठिन कार्य है। एक ईसाई जिस की धारणा यह है कि बस उसी एक की धर्म-मान्यता सही है, अन्य सभी मान्यताएं ग़लत हैं, भला इस धारणा के रहते वह दूसरों की समीक्षा के मामले में न्यायपरता का कब प्रदर्शन कर सकता है? जिसके मन में पहले से ही यह बात जम गई हो कि उसके सिवा सब झूठे हैं, वह दूसरे धर्मों के प्रति न्याय या आदर-भाव कैसे प्रकट कर सकता है? सिर्फ अपने ही धर्म को ईश्वरप्रदत्त मानने वाले से कब यह आशा की जासकती है कि वह अन्य धर्मों का मन से आदर-सत्कार करे। कुर्आन शरीफ ने इस बात का यह उपचार बताया है, कि उस ने समस्त धर्मों का ईश्वर-प्रेषित होना ***ईमान*** (विश्वास) का मौलिक अंग ठहरा दिया। फलतः समस्त धर्मों को ईश्वरप्रदत्त मानना मुसलमान के ***ईमान*** (विश्वास) का अनिवार्य अंग है। कुआर्न शरीफ ने इसको ***ईमान*** की पहली ही शर्त ठहरा दिया है :

وَالَّذِيْنَ يُؤْمِنُوْنَ بِمَا اُنْزِلَ اِلَيْكَ وَمَا اُنْزِلَ مِنْ قَبْلِكَ

"सच्चे मुसलमान वही हैं जो उस पर ***ईमान*** लाते हैं जो ईश्वाणी के रूप में तुझ पर उतारा गया, और उस पर जो तुझ से पहले (पूववर्ती पैग़म्बरों-अवतारों पर) उतारा गया"(2 : 4)।

कुर्आन शरीफ ने इस सिद्धांत को केवल मान्यता तक ही सीमित नहीं रहने दिया, बल्कि इसको व्यवहार में भी परिणत किया। मुसलमानों ने अन्य धर्मावलंबियों के साथ अद्भुत उदारता प्रकट करके एक आदर्श धर्म-साम्य की स्थापना कर दी।

मुसलमानों के बारे में आम धारणा यही है कि वे युद्ध-प्रिय थे। परन्तु ये युद्ध प्रारंभ-कालीन मुसलमानों ने क्यों लड़े, इन युद्धों का उद्देश्य

क्या था? आलोचक तो यही कहेंगे कि वे लोग तलवार के बल पर इस्लाम मनवाना चाहते थे। परन्तु असल वास्तविकता क्या है? इसका ज्ञान स्वयं उसी स्थल से हो जाता है जहाँ कुर्आन शरीफ़ में मुसलमानों को युद्ध लड़ने की अनुमति दी गई है, फरमाया : أُذِنَ لِلَّذِيْنَ يُقَاتَلُوْنَ بِأَنَّهُمْ ظُلِمُوْا

"केवल उन्ही लोगों को (युद्ध लड़ने की) अनुमति दी जाती है जिन से युद्ध किया जाता है, इस लिये कि उन पर ज़ुल्म किया गया"(22 : 39)। यह युद्ध की शुरूआत है, कोई दूसरी जाति मुसलमानों पर युद्ध ठोंस चुकी है, और उनको तलवार से मिटा देना चाहती है, इसी नाज़ुक परिस्थिति में आत्मरक्षा की अनुमति दी जाती है। यह तो हुआ युद्ध का आरंभ, आइये यह देखें कि इस्लामी युद्धों का मुख्य उद्देश्य क्या था, स्वयं कुर्आन शरीफ़ फरमाता है : وَلَوْلَا دَفْعُ اللّٰهِ النَّاسَ بَعْضَهُمْ بِبَعْضٍ لَّهُدِّمَتْ صَوَامِعُ وَبِيَعٌ وَّصَلَوٰتٌ وَّمَسَاجِدُ يُذْكَرُ فِيْهَا اسْمُ اللّٰهِ كَثِيْرًا۔

"और यदि अल्लाह इस रीति से लोगों को एक दूसरे के द्वारा न हटाता रहता तो निश्चय ही मठ, और गिर्जे, और उपासनागृह, और मस्जिदें जिन में अल्लाह का बहुत नाम लिया जाता है, ढा दिए जाते"(22 : 40)। यह है इस्लामी युद्धों का मात्र उद्देश्य ! पहली चिन्ता यही है कि ईसाई साधुओं की कोठरियाँ, गिर्जा घर और अन्य उपासनागृह विध्वंस से सुरक्षित रहें। यह है वह परम उपकार जो इस्लाम ने अन्य धर्मों पर किया, अर्थात् उनके उपासनागृहों को विनष्ट होने से बचा लिया। यह चिन्ता क्यों? क्या कुर्आन् उनको अच्छी नज़र से देखता है? नहीं, अन्यत्र स्वयं ही फरमाया है : وَرَهْبَانِيَّةَ ۨابْتَدَعُوْهَا مَا كَتَبْنٰهَا عَلَيْهِمْ اِلَّا ابْتِغَآءَ رِضْوَانِ اللّٰهِ فَمَا رَعَوْهَا حَقَّ رِعَايَتِهَا.

"और रहा वैराग, इस प्रथा को उन्हों ने यानि ईसाइयों ने अल्लाह की प्रसन्नता के निमित स्वयं ही आविष्कृत किया, हम ने इसे उन पर अनिवार्य नहीं ठहराया, पर (आगे चलकर) वे इसकी मर्यादा का पालन न कर सके"(57 : 27)।

यह था उनके वैराग्य का वृतांत, अब तनिक उनकी मान्यताओं का हाल भी सुनिये। ईसाई लोग हज़रत ईसा (अ.स.) को अल्लाह का एकमात्र पुत्र मानते हैं, उनकी इस अवैज्ञानिक धारणा के विषय में कुर्आन शरीफ़ कहता है : تَكَادُ السَّمٰوٰتُ يَتَفَطَّرْنَ مِنْهُ وَ تَنْشَقُّ الْاَرْضُ وَ تَخِرُّ الْجِبَالُ هَدًّا

"निकट है कि आकाश इस (मान्यता) के कारण फट पड़ें, और धरती चिर जाये, और पर्वत काँप कर ध्वस्त हो जायें"(19 : 90)।
इस आयत से इस बात का भलीभांति अन्दाज़ा हो जाता है कि कुर्आन की नज़रों में ईसाइयों की यह मान्यता कितनी घृणित, कितनी निन्दनयि है ! कुर्आन उनके वैराग्य को भी वैध नहीं ठहराता, लेकिन तिस पर भी सर्वप्रथम यही कहता है :

"यदि अल्लाह युद्ध न कराये तो ईसाई वैरागियों की कोठरियाँ ध्वस्त हो जायेंगी"
और साथ ही फरमाया *'व बियअ'* (और गिर्जे-घर) भी। देखिये अभी वैरागियों की कोठरियों की चिन्ता थी अब गिर्जा घरों की चिन्ता होने लगी। उन्ही गिर्जा घरों की चिन्ता जहाँ रात दिन हज़रत ईसा (अ.स.) की ईश्वरता का प्रचार होता रहता है। फिर फरमाया :

"*'व सुलवात'* यानि संसार के अन्य पूजा-गृह"
सब के अन्त पर ***मस्जिदों*** को रखा, और साथ ही बता दिया कि ---
"इन में अल्लाह का नाम सब से अधिक लिया जाता है"। इसके बावजूद अन्य धर्मों के उपासना-गृहों और गिर्जा-घरों की रक्षा को पहले रखा। यह है वह अपूर्व सम्मान व सत्कार जिस का प्रदर्शन इस्लाम अन्य धर्मों के प्रति करता है। यह बड़ा ही कठिन कार्य, कि कोई व्यक्ति किसी और व्यक्ति को प्राथमिकता दे और स्वयं को पीछे रखे। यह इस्लाम का वह उपकार है जो उस ने अन्य धर्मों पर किया है।

आशय यह कि इस्लाम अमली तौर पर अन्य धर्मों का मानसम्मान करता है। इस्लाम सिर्फ़ इतने पर ही बस नहीं करता, बल्कि इस से भी आगे निकल जाता है। फरमाया : لَا تَسُبُّوا الَّذِيْنَ يَدْعُوْنَ مِنْ دُوْنِ اللّٰهِ

"इन बहुदेववादियों के देवी-देवताओं को, जिन्हें ये अल्लाह के सिवा पुकारते हैं, गाली न दो"(6 : 108)।
यह घोषणा कर मानो हमें समस्त धर्मों के महा पुरुषों के आदर-सत्कार की सीख दे दी, भले ही उन्हों ने उन महा पुरुषों को *'अल्लाह के सिवा'* ईश्वरत्व के पद पर आसीन कर दिया हो। अतः जहाँ एक ओर ज्ञान के रूप में समस्त धर्मों के मौलिक सिद्धांतों पर विश्वास लाना अनिवार्य ठहरा दिया, वहीं दूसरी ओर व्यवहारतः उनका यहाँतक आदर किया, कि मानो सभी धर्मों को एक ही स्तर पर लाकर, उनके मध्य समानता पैदा कर दी।

अन्य धर्मों के मध्य इस्लाम का स्थान

अब प्रश्न यह पैदा होता है कि जब इस्लाम ने सभी धर्मों को समानता देदी तो इसका अपना स्थान क्या हुआ? यह स्वयं क्या बना? दूसरे धर्मों को ईश्वरप्रेषित मान लेना एक अत्यन्त सुखद बात तो है, परन्तु इस मान्यता के भीतर घोर कठिनाइयाँ भी हैं, वह यह कि इस तरह इसकी अपनी पुज़ीशन अनिश्चित हो जाती है। अन्य धर्मों के आदर-सत्कार को इस्लाम ने यहाँ तक बढ़ा दिया कि जहाँ भी किसी पूर्ववर्ती धर्मग्रन्थ की चर्चा की तो बड़े आदर सहित की, मिसाल के तौर पर यहूदियों की ***तौरात*** का ज़िक्र किया तो यों फ़रमाया :

فِيهَا هُدًى وَّنُورٌ

"इस में मार्गदर्शन और प्रकाश है"(5 : 44)।
अब जब इसके अन्दर भी मार्गदर्शन और आध्यात्मिक प्रकाश मौजूद है, तो ***'तौरात'***-वाले (यहूदी) कहेंगे कि फिर इस कुर्आन को हमारे सामने क्यों पेश करते हो? मार्गदर्शन और प्रकाश तो पहले ही हमारे इस ग्रन्थ में मौजूद है, फिर वह कौन सी बात है जिस केलिए तुम्हारे कुर्आन शरीफ को माना जाए? अतएव इस परिदृष्य में कुर्आन शरीफ सर्वप्रथम अपना भी एक स्थान स्थापित करता है, फ़रमाया :

وَإِذْ أَخَذَ اللَّهُ مِيثَاقَ النَّبِيِّينَ لَمَا آتَيْتُكُم مِّن كِتَابٍ وَحِكْمَةٍ ثُمَّ جَاءَكُمْ رَسُولٌ

مُصَدِّقٌ لِّمَا مَعَكُمْ لَتُؤْمِنُنَّ بِهٖ وَلَتَنْصُرُنَّهٗ

"और जब अल्लाह ने (पूर्ववर्ती) नबियों-अवतारों द्वारा यह प्रतिज्ञा ली कि देखो मैं ने तुम को किताब और तत्त्वज्ञान प्रदान किया है, फिर तुम्हारे पास एक ***'रसूल'*** आयेगा जो उसको सत्यापित करेगा जो तुम्हारे पास है, फिर तुम्हें उस पर ईमान लाना होगा, और उसकी सहायता करनी होगी"। (3 : 80)

दूसरी जगह फ़रमाया है : وَاَنْزَلْنَآ اِلَيْكَ الْكِتٰبَ بِالْحَقِّ مُصَدِّقًا لِّمَا بَيْنَ يَدَيْهِ مِنَ الْكِتٰبِ وَمُهَيْمِنًا عَلَيْهِ فَاحْكُمْ بَيْنَهُمْ بِمَآ اَنْزَلَ اللّٰهُ

"और हम ने तेरी ओर (यह) किताब सत्य के साथ उतारी, उसको सत्यापित करते हुए जो (मूल)-किताब में से पहले मौजूद है, और उसकी संरक्षक। अतः उनके बीच उसके अनुसार फ़ैसला कर जो अल्लाह ने उतारा है"(5 : 48)।

पहली आयत में स्पष्टतः एक ***रसूल*** के आगमन का पूर्व-वचन है, और उसकी निशानी यह बता दी कि ***वह संपूर्ण धर्म-जगत् के दिव्य ग्रन्थों को सत्यापित करेगा***। जाओ, और एकएक कर सभी ***नबियों***, सभी ***अवतारों*** की धर्म-पुस्तकों को तलाशो, सिवाय ***क़ुर्आन शरीफ़*** के, सिवाय ***हज़रत पैग़म्बर-श्री*** (सल्ल.) के किसी को भी अन्य किताबों का सत्यापन करनेवाला न पाओ गे। निश्चय ही, ***तौरात*** को जिस का जी चाहे देख ले, या ***वेदों*** ही से कोई निकाल कर दिखलाये कि उस ने कहाँ अन्य धर्म-ग्रन्थों को सत्यापित किया है?

रही यह बात कि क्या वाक़यी समस्त पूर्ववर्ती ***पैग़म्बरों-अवतारों*** ने हज़रत पैग़म्बर-श्री (सल्ल.) के ***शुभ आगमन*** की पुर्वसूचना दी थी, इसको साबित करना किसी हद तक मुश्किल ज़रूर है। क्योंकि बहुत सारे पैग़म्बरों-अवतारों द्वारा लाई हुई दिव्य पुस्तकें विलुप्त हो चुकी हैं। ऐसे में उन की भविष्यवाणियों का कहाँ से पता लगे ! परन्तु इस बाधा का एक अनुकूल उपाय सुझा दिया है, वह यह कि जिस तरह हज़रत मुहम्मद (सल्ल.) संसार के समस्त पैग़म्बरों-अवतारों के दिव्य अस्तित्व को सत्यापित

करते हैं, उसी तरह वे सब भी उन के शुभागमन की भविषयवाणी करते हैं। इस तरह क़ुर्आन शरीफ़ ने धर्म को मानो ज्ञान-विज्ञान का रूप प्रदान कर दिया। बड़ा ही तत्त्वज्ञानयुक्त है यह परम पावन ग्रन्थ ! इसके भीतर ज्ञान-प्रज्ञान के असीम भंडार जमा कर दिये गए हैं। ज्ञान-विज्ञान के इतने बहुमुखी पक्षों को इस में प्रतिपादित किया गया है कि एक जर्मन प्रोफ़ेसर अपनी पुस्तक में, जिसका नाम ***'क़ुर्आन विषयक नवीन खोजें'*** है, विस्मयपूर्वक लिखता है --- ऐसा प्रतीत होता है कि हज़रत मुहम्मद साहिब ने अपने पास बाइबिल के नोट रखे छाड़े थे, क्योंकि क़ुर्आन के एकएक वाक्य बल्कि एकएक शब्द में बाइबिल के कई-कई अध्याय साररूप में गर्भित हैं। परन्तु इन महाशय को इतना भी ज्ञान नहीं कि हज़रत पैग़म्बर-श्री (सल्ल.) को बाइबिल का ज्ञान तो क्या होना था, आप तो मामूली लिखे-पढ़े भी न थे। क़ुर्आन शरीफ़ ने ***इस्राईल*** जाति के संपूर्ण इतिहास में से केवल दो ही बातें चुनीं, और अन्य सभी को छोड़ दिया। एक तो यह कि उसके मूल-पूर्वज ***हज़रत इब्राहीम*** (अ.स.) की चर्चा के साथ ही उसकी यह प्रार्थना भी प्रस्तुत कर दी :

رَبَّنَا وَابْعَثْ فِيهِمْ رَسُولًا مِّنْهُمْ يَتْلُوا عَلَيْهِمْ آيَاتِكَ وَيُعَلِّمُهُمُ الْكِتَابَ وَالْحِكْمَةَ وَيُزَكِّيهِمْ

"हमारे रब ! इन्हीं में से एक रसूल उत्पन्न कर, जो इनको तेरी आयतें पढ़ कर सुनाये, और इन्हें किताब और बुद्धिमत्ता सिखाए, और इनका अन्तःशोधन करे"(2 : 129)।

यह प्रार्थना हज़रत पैग़म्बर-श्री मुहम्मद (सल्ल.) के बारे में है। इस ऐतिहासिक प्रार्थना की चर्चा तो स्पष्ट शब्दों में कर दी लेकिन हज़रत ***मूसा*** (अ.स.) की इस महान भविष्यवाणी ---- "तेरा प्रभु परमेश्वर तेरे मध्य से, ***तेरे जाति-भाइयों में से मेरे समान*** एक ***नबी*** तेरे लिए उत्पन्न करेगा"(व्यवस्था विवरण 18 : 15) ---- को केवल संकेत के रूप में ही प्रस्तुत किया, फरमाया :

إِنَّا أَرْسَلْنَا إِلَيْكُمْ رَسُولًا شَاهِدًا عَلَيْكُمْ كَمَا أَرْسَلْنَا إِلَىٰ فِرْعَوْنَ رَسُولًا

"हम ने तुम्हारी ओर *'रसूल'* भेजा है, जो तुम पर गवाह है, जिस तरह हम ने फ़िरऔन की ओर 'रसूल' भेजा"(73 :15)।
अर्थात् वह मूसा के समान *'नबी'* प्रकट हो गया है। परन्तु एक और भविष्यवाणी का भी सविस्तार वर्णन किया, और वह है ***इस्राईल जाति के अन्तिम पैग़म्बर हज़रत ईसा*** (अ.स.) की वह भविष्यवाणी जो उन्हों ने एक सुसमाचार के रूप में घोषित की थी :

وَإِذْ قَالَ عِيسَى ابْنُ مَرْيَمَ يَا بَنِي إِسْرَائِيلَ إِنِّي رَسُولُ اللَّهِ إِلَيْكُمْ مُصَدِّقًا لِمَا
بَيْنَ يَدَيَّ مِنَ التَّوْرَاةِ وَمُبَشِّرًا بِرَسُولٍ يَأْتِي مِنْ بَعْدِي اسْمُهُ أَحْمَدُ

"और जब मरयम के पुत्र ईसा ने कहा : हे ***इस्राईल*** की सन्तान! मैं तुम्हारी ओर अल्लाह का पैग़म्बर बन कर आया हूँ, इस का सत्यापन करते हुए जो मुझ से पहले तौरात में है, और मैं एक पैग़म्बर के शुभागमन का सुसमाचार देता हूँ जो मेरे बाद आयेगा और उसका नाम *अहमद* होगा"(61 : 6)।
मतलब यह कि समस्त पैग़म्बर और अवतार जिस महा मानव के शुभागमन की लोगों को प्रतीक्षा, जिसका इन्तज़ार कराते हैं --- कि वह आयेगा, हज़रत ईसा (अ.स.) उसी के बारे में यह सुसमाचार सुनाते हैं कि वह अब आने ही वाला है। इस प्रकार हज़रत ईसा (अ.स.) ने हज़रत पैग़म्बर-श्री (सल्ल.) को वह *'नबी'* वह *'अवतार'* घोषित कर दिया जिसके मंगलमय आगमन की पर्वसूचना समस्त पैग़म्बरों, समस्त अवतारों ने दे रखी थी।[1]

---

1. पाठकगण की ज्ञानवृद्धि के लिये हम कुछ उद्धरण पूर्ववर्ती धर्मग्रन्थों से पेश करते हैं। पारसियों के पवित्र ग्रन्थ ज़ेंद अवस्ता (Zand Avesta) में लिखा है :
"जब पारसी लोग धर्मकर्म छोड़ अनैतिकता में लिप्त होजाएं गे, तो अरबों के बीच एक फ़ुरुष पैदा होगा जिसके अनुयायी ईरान के सिंहासन, राज्य और धर्म के स्वामी होजाएं गे। और ईरान के उदंड लोग पगस्त होजाएं गे। अग्निशाला को त्याग हज़रत इब्राहीम (अ.स.) द्वारा निर्मित ख़ाना काअबा (जहाँ से समस्त देवप्रतिमाओं को हटा दिया जाएगा) की ओर मुँह करके नमाज़ पढ़ेंगे, और यह महा फ़ुरुष समस्त लोकलोकांतरों केलिये दयामुर्ति होगा। उसके अनुयायी ईरान और तौस और बलख़ तथा प्रतिवेशी महा नगरों पर अधिकार पा लेंगे। उनका धर्म-विधायक (नबी) के पास वाणी-रूपी चमत्कार होगा, और उसकी वाणी विद्वतापूर्ण होगी।"
(जारी है)

इस तरह अन्य धर्मों के बीच इस्लाम की पुज़िशन सुस्पष्ट हो जाती है। वास्तव में इस्लाम समस्त पूर्ववर्ती धर्मों द्वारा प्रतिज्ञात (promised) धर्म है। प्रत्येक धर्म इस अन्तिम धर्म की पूर्वसूचना देता आया है, और इस के प्रतिग्रहण का प्रत्येक धर्म में पहले से स्पष्ट आदेश मौजूद है।

इसके अतिरिक्त इस्लाम की प्रमुख विशेषता यह है, कि जहाँ अन्य सभी धर्म जातीय अथवा राष्ट्रीय हैं वहीं इस्लाम विश्वव्यापी होने के कारण संपूण मानवजाति का धर्म है। इस्लाम की इसी विचित्र पुज़िशन के निमित पूर्ववर्ती पैग़म्बरों-अवतारों ने समस्त मानवसमाजों को इस्लाम के पैग़म्बर-श्री (सल्ल.) पर *'ईमान'* (विश्वास) लाने की प्रेरणा और अनुदेश दिया था। हज़रत ईसा (अ.स.) के बारे में भी बताया :

رَسُوْلًا اِلٰى بَنِىْٓ اِسْرَاۗءِيْلَ

"आपको सिर्फ इस्राईल जाति की ओर पैग़म्बर बना कर भेजा गया था"।

(3 : 48)

चुंकि हज़रत ईसा (अ.स.) राष्ट्रीय अथवा जातीय पैग़म्बरों की शृंखला के अन्त पर प्रकट हुए इस लिये बता दिया कि उन के मिशन का अधिकार-क्षेत्र इस्राईल जाति तक ही सीमित था। इस बात का सबूत

(फुट नोट का शेष भाग)

अब हम अथर्ववेद का एक उद्धरण प्रस्तुत करते हैं :

"इंद जना उप श्रुत नराशंस स्तविष्यते। षष्टिं सहस्रा नवतिं च कौरम आ रुशमेषु दद्महे।।1।। उष्ट्रा यस्य प्रवाहिणो वधूमन्तो द्विर्दश। वर्ष्मा रथस्य नि जिहीषत्ते दिव ईषमाण उपस्पृशः।।2।। एष ऋषये मामहे शतं निष्कान् दश स्रजः। त्रीणि शतान्यर्वतां सहस्रा दश गोनाम्।।3।।"

(20:127:1-3)

अर्थात् "हे लोगो, ध्यानपूवक सुनो! प्रशंसनीय पुरुष (अ.*'मुहम्मद'*) प्रशंसा पायेगा। हम इस स्वदेशत्यागी यानि हिजरत करने वाले को साठ हज़ार और नौवे शत्रुओं के प्रति अपनी शरण देंगे। जिसकी सवारी दो आकर्षक ऊँटनियाँ हैं,उस की प्रतिष्ठा और उस के वाहन की उत्कृष्टता अपनी तीव्र गति से आकाश को स्पर्ष कर नीचे उतरती है। परमात्मा ने मामह (यानि मुहम्मद) ऋषि को सौ सोने की अशरफियाँ, दस हार, तीन सौ अरबी घोड़े और दस हज़ार गायें दीं, यानि दस हज़ार गोधृवृत्ति वाले अनुयायी प्रदान किये।"(सविस्तार बहस केलिए देखें 'Muhammad in World Scriptures', by Maulana Abdul Haque Vidyarthi) - अनुवादक

स्वयं ***इन्जील*** (Gospel) में मौजूद है। एक अवसर पर जब एक ग़ैर-इस्राईली महिला हज़रत ईसा के पास आई और उस ने आप से उपदेश की याचना की, तो आप ने साफ़ शब्दों में बता दिया :

"मैं इस्राएल वंश की खोई हुई भेड़ों को छोड़कर अन्य किसी के लिये नहीं भेजा गया"(मत्ती 15 : 24)।

अर्थात् जितने पैग़म्बर या अवतार क़ुर्आन शरीफ़ से पहले आए वे सभी किसी न किसी जाति अथवा राष्ट्र विशेष के लिये ही प्रकट हुए थे। ईसाइयों ने हज़रत ईसा के बाद यह मत स्वयं ही गढ़ लिया कि हज़रत ईसा का आगमन सर्वसंसार केलिये था। पाल (Paul) वह पहला व्यक्ति है जिस ने हज़रत ईसा के जाने के बाद यह कहा : 'यहूदी तो हमारी बातों को मानते नहीं, चलो अन्य जातियों में जाकर इस संदेश को फैलाएं।' हालाँकि हज़रत ईसा के मूल-मिशन का कदापि यह उद्देश्य न था, न उन्हों ने वह दावा किया था जो उनकी ओर से पेश किया गया। सारांश यह कि प्रत्येक पूर्ववर्ती धर्म का संबंध किसी न किसी जाति विशेष से ही था। इसके विपरीत इस्लाम संसार का वह एकमात्र धर्म है जिसका संदेश विश्वव्यापि है। पूर्ववर्ती धर्मों के इस जातिगत स्वरूप ने कालांतर में भिन्न-भिन्न जातियों और राष्ट्रों को जन्म दिया। प्रत्येक केवल अपनी ही धार्मिक मान्यताओं को सत्य मान अन्य धर्मों के अनुयायिओं को घृणा और नफ़रत का पात्र समझता। इस लिये इन सब के लिये एक सार्वभौम धर्म भेजा गया, ताकि सभी धर्म पुनः एकता और बन्धुत्व के पावन सूत्र में जुड़ जाएं। और वह धर्म इस्लाम ही है जिस ने यह चमत्कार कर दिखाया। इस्लाम ने तमाम जातीय भेदभाव मिटा डाले --- गोरे और काले, दास और स्वामी, राजा और प्रजा, तथा अन्य वंशगत या राष्ट्रगत भेदभावों को सर्वथा समाप्त कर डाला। इसका एक अद्भुत एवं रोचक दृश्य आज भी देखने को मिलता है --- कहाँ? वोकिंग (Woking)[1] की उस मस्जिद में

1.बर्तानिया की मस्जिद, जहाँ विश्वविख्यात इस्लामी धर्मप्रचारक हज़रत ख़्वाजा कमाल उद्दीन (1870 ई. से 1932 ई.) ने सन् 1912 ई. में वर्तमान युग का प्रथम इस्लामी मिशन स्थापित किया। इस मिशन द्वारा हज़ारों ईसाई मुसलमान हुए - अनुवादक

जहाँ लोग जब नमाज़ में खड़े होते हैं, या खाने की मेज़ पर बैठते हैं तो राजा और रंक, श्रेष्ठ और अधम का कोई अन्तर शेष नहीं रहता, सब एक दूसरे के संग साथ-साथ खड़े होते और बैठते हैं। एक लॉड (Lord) एक मामूली आदमी के साथ, एक लेफ्टिनेंट (Lieutenant) एक साधारण सिपाही के साथ, एक स्वामी एक दास के साथ ---- सब के बीच एक विचित्र समता नज़र आती है। यही समानता इस्लाम की और बहुत सी बातों में दृष्टिगोचर होती है। हज्ज में इसका प्रदर्शन अपनी चरम सीमा को पहुंच जाता है। वहाँ मानवीय भेदभाव के सभी प्रकार मिट जाते हैं। हज्ज में सभी को अपने वस्त्र त्याग कर दो अन-सिली चादरें धारण करना पड़ती हैं। इस तरह राजा और भिखारी में कोई अन्तर शेष नहीं रहता। अपने एकमात्र परमेश्वर के सम्मुख सभी जन एक ही लिबास और एक ही हावभाव में नज़र आते हैं । समता का यह व्यापक एवं मूर्त चित्रण यदि किसी धर्म ने प्रस्तुत किया है, तो वह इस्लाम ही है। अन्तरजातीय अथवा अन्तरराष्ट्रीय एकता और समता का एकमात्र जनक इस्लाम ही है।

अतः इस्लाम की प्रथम विशेषता यही है कि इस ने जातियों और राष्ट्रों के वे सभी चिन्ह और भिन्नताएं पूर्णतया मिटा कर रख दीं, जो मानव-समाज में मतभेद या अलगाववादिता का कारण थे। फिर दूसरी बात यह बताई :

وَاَنْزَلْنَا اِلَیْکَ الْکِتٰبَ بِالْحَقِّ مُصَدِّقًا لِّمَا بَیْنَ یَدَیْہِ مِنَ الْکِتٰبِ وَمُھَیْمِنًا عَلَیْہِ

"और हम ने तेरी ओर यह किताब सत्य के साथ उतारी, उसका सत्यापन करते हुए जो (मूल)-किताब में से पहले मौजूद है, और उसकी संरक्षक"(5 : 48)।

निस्संदेह अन्य धर्म-ग्रन्थों की भाँति *'तौरात'* भी अपने देश और काल के निमित एक प्रकाश और मार्गदर्शन थी। परन्तु कुर्आन इस लिये आया कि पूर्ववर्ती ग्रन्थों की सच्ची और स्थाई शिक्षाओं को अपने भीतर एकत्र कर, उनकी त्रुटियों का समाधान कर दे। देखिये, कुर्आन शरीफ किस तरह अपनी हर बात को विज्ञान के रूप में प्रस्तुत करता है? यह *'मुहैमिनन*

अलैहि'(उसका संरक्षक है) कहने की ज़रूरत क्यों पेश आई? इस लिये कि पुर्ववर्ती ग्रन्थों में मनुष्य ने हस्तक्षेप कर दिया :

فَوَيْلٌ لِّلَّذِينَ يَكْتُبُونَ الْكِتَابَ بِأَيْدِيهِمْ ثُمَّ يَقُولُونَ هَٰذَا مِنْ عِندِ اللَّهِ

"अतः उन पर दुख की मार ! जो अपने हाथों से ग्रन्थ लिखते हैं और फिर कहते हैं : यह अल्लाह की ओर से है"(2 : 79)।

सारी ***इंजीलों*** (Gospels) को ही देख लो, लिखते हैं 'मत्ती के अनुसार शुभ-संदेश' --- सो यह ***'मुहैमिनन अलैहि'*** कहने की ज़रूरत इस लिये पेश आई कि इन ग्रन्थों में मानवीय हस्तक्षेप हुआ था।

लेकिन एक समस्या फिर रह जाती है, वह यह कि समस्त धर्म-ग्रन्थों का यह मानवीय अन्तर्वेशन कैसे अभिव्यक्त किया जाये? बाइबिल का उदाहरण तो प्रस्तुत कर दिया, परन्तु अन्य धर्म-ग्रन्थों का अन्तर्वेशन किस प्रकार साबित किया जाए? इस संबंध में अगर हम ऐतिहासिक तथ्यों को पेश करें तो यह मानवीय अन्तर्वेशन स्वतः दृष्टिगोचर हो जाता है। इस में भी संशय नहीं कि कालांतर में शब्दों के अर्थों में काफी व्यपकता आ गई है। परन्तु वेदों का अन्तर्वेशन भी इसी मूलाधार द्वारा साबित होता है, क्योंकि वैदिक रचाओं के ऊपर आज भी यह लिखा है कि अमुक व्यक्ति विशेष ने इस रचा को अमुक राजा की स्तुति के निमित रचा था। कहा जा सकता है कि दूसरों के प्रति न्यायादीश बनकर तुम जिस तरह का फैसला चाहो सुना दो, क्या ईसाई आदि यह नहीं कहते कि क़ुर्आन में भी मानवीय अन्तर्वेशन हुआ है? यह एक स्वतंत्र विषय है। परन्तु क़ुर्आन शरीफ़ के बारे में इतना ज़रूर कहना चाहूँगा कि इस संबंध में ऐसी-ऐसी गवाहियाँ और प्रमाण मौजूद हैं, कि जिन को झुठलाया नहीं जा सकता और जिन से पूरणरूपेण यह सिद्ध हो जाता है कि क़ुर्आन शरीफ़ आज तक मानवीय हस्तक्षेप से सुरक्षित है। बल्कि इसका एक काम यह भी बताया :

وَمَا أَنزَلْنَا عَلَيْكَ الْكِتَابَ إِلَّا لِتُبَيِّنَ لَهُمُ الَّذِي اخْتَلَفُوا فِيهِ

"और हम ने तुझ पर यह किताब सिर्फ इस लिए उतारी है कि तू

उनके लिये वे बातें सुस्पष्ट कर दे जिन में वे मतभेद प्रकट करते हैं"।
(16 : 64)

आशय यह कि कुर्आन शरीफ उन सब बातों को खोल कर बता देता है जिन में लोगों ने मतभेद किया। एक अन्य स्थल पर आया है :

فِطْرَتَ اللّٰهِ الَّتِیْ فَطَرَ النَّاسَ عَلَیْهَا لَا تَبْدِیْلَ لِخَلْقِ اللّٰهِ ذٰلِكَ الدِّیْنُ الْقَیِّمُ

"अल्लाह की बनाई हुई प्रकृति पर स्थिर रह जिसके अन्तर्गत उस ने मनुष्यों की रचना की, अल्लाह की रचना को कोई परिवर्तित नहीं कर सकता। यही स्थाई धर्म है ---"(30 : 30)।

अर्थात् धर्म के उस भाग को कुआन शरीफ में सुरक्षित कर दिया जिस की सत्यता को मानव-प्रकृति पहचानती है। फिर एक और विशेषता यह बताई कि :

اَلْیَوْمَ اَكْمَلْتُ لَكُمْ دِیْنَكُمْ وَاَتْمَمْتُ عَلَیْكُمْ نِعْمَتِیْ وَرَضِیْتُ لَكُمُ الْاِسْلَامَ دِیْنًا

"आज मैं ने तुम्हारे लिये तुम्हारा धर्म पुर्ण कर दिया, और मैं ने अपनी नेमत तुम पर पूरी कर दी, और मैं ने तुम्हारे लिये इस्लाम को धर्म के रूप में पसन्द किया"(5 : 3)।

हमें इस मामले में ज़्यादा बहस में पड़ने की ज़रूरत नहीं, क्योंकि इस किसम का दावा और किसी धर्म-ग्रन्थ में नहीं। इस लिए इस बहस में पड़ना ही फज़ूल है। देखिये, इसी (तथाकथित सर्वकालीन) बाइबिल में यह एतिराफ स्पष्टतः मौजूद है :

"मुझे तुमसे और बहुत कुछ कहना है, परन्तु अभी तुम उसे सहन नहीं कर सकते। जब वह अर्थात् सत्य का आत्मा आयेगा, तब वह सम्पूर्ण सत्य में तुम्हारा मार्गदर्शन करेगा"(यूहन्ना 16 : 12-13)।[1]

---

1. गीता में भी श्रीकृष्ण साफ-साफ कहते हैं कि यह उनका अन्तिम संदेश नहीं, क्योंकि अभी उनके और बहुत से अवतार शेष हैं। और किसी भी पूर्ववर्ती पैग़म्बर या अवतार के दुबारा आने का अर्थ यही होता है कि कोई और महा पुरुष उसके आध्यात्मिक हावभव और गुणों को धारण कर प्रकट हो। श्रीकृष्ण के पहले भी कई अवतार माने जाते

यह हज़रत ईसा की अपनी स्वीकारोक्ति है, इसके रहते कुर्आन शरीफ़ के इस दावे पर बहस की ज़रूरत ही शेष नहीं रहती। वे स्वयं कहते हैं कि सारी शिक्षाएं वह नहीं दे सके। इस महा कार्य केलिये वे एक और पुण्यात्मा की प्रतीक्षा का उपदेश देते हैं। वह पुण्यात्मा कौन है? वह वही प्रतिज्ञात (Promised) नबी है जिस के शुभागमन की सभी पैग़म्बरों-अवतारों ने अपने-अपने काल में पूर्वसूचना दी।

समस्त मतभेदों का कुर्आन शरीफ़ में फ़ैसला

मैं ने कहा था कि कुर्आन शरीफ़ का यह दावा है कि वह समस्त धार्मिक मतभेदों का फ़ैसला करने आया है :

وَمَا أَنزَلْنَا عَلَيْكَ الْكِتَابَ إِلَّا لِتُبَيِّنَ لَهُمُ الَّذِي اخْتَلَفُوا فِيهِ

"और हम ने तुझ पर यह किताब सिर्फ़ इस लिये उतारी है कि तू उनके लिये वे बातें सुस्पष्ट कर दे जिन में वे मतभेद प्रकट करते हैं"। (16 : 64)

धर्म को यदि समग्ररूप में लिया जाये, तो इसका क्या चित्र नज़र आता है? यही कि जगह-जगह मतभेद ही मतभेद हैं। कोई कहता है कि परमात्मा का कोई अस्तित्त्व ही नहीं, कोई कहता है कि परमात्मा तीन हैं, और कोई करोड़ों ईश्वरों में आस्था रखता है। तात्पर्य यह कि इन के बीच धर्म के मौलिक सिद्धांत में ही इतना बड़ा मतभेद पाया जाता है। ऐसे में इस जटिल समस्या का समाधान हो भी तो कैसे? कुर्आन शरीफ़ का दावा है कि वह इस जटिलतम समस्या को भी हल कर सकता है। इस में तनिक

हैं, क्या हर बार उन्हों ने देवकीनन्दन के रूप में ही जन्म लिया? क्या हर बार उनका उपदेश गीता ही था? बाइबिल में लिखा था कि ***मसीहा*** से पहले ***ईलिया*** नबी का पुनरागमन होगा, जब हज़रत ईसा मसीह से ईलिया के बारे में प्रश्न हुआ कि वह कहाँ है, तो उन्हों ने भी यही कहा कि ***यहयया*** (John the Baptist) ही ईलिया का दूसरा अवतार है। जो लोग भविष्यवाणी संबंधी इस वर्णन शैली से अपरिचित होते हैं, उन्हें हर युग में ठोकर ही लगी है,अल्लाह हमें इस ठोकर से बचाये - अमीन (अनुवादक)।

भी शंका नहीं कि अगर क़ुर्आन शरीफ़ इस समस्या का हल बता दे, तो यह स्वयं में एक ऐसी उपलब्धि होगी कि जिस के सामने अन्य सभी बातें तुच्छ और हीन होंगी। चुनांचि क़ुर्आन शरीफ़ कहता है :

قل یا هل الکتاب تعالوا الیٰ کلمة سوا۔ بیننا و بینکم الا نعبد الا الله و لا نشرک به شیئاً و لا یتخذ بعضنا بعضاً اربابا من دون الله

"हे धर्मग्रन्थ वालो ! उस बात की ओर आओ जो हमारे और तुम्हारे बीच समान है, वह यह कि हम अल्लाह के सिवा किसी की *'इबादत'* न करें, और यह कि उसके साथ किसी को *'शरीक'*(साझेदार) न ठहराएं, और यह कि हम में से कोई दूसरों को अल्लाह के सिवा अपना *'रब'*(प्रतिपालक) न बनाए"(3 : 64)।

आओ, समस्त धर्मों के मूलभूत एवं सामान्य सिद्धांत को निकाल कर देखें। हज़रत ईसा के (तथाकथित) ईश्वरत्त्व का सतर्क खंडन करने के पश्चात् ईसाइयों को *'मुबाहला'*(यह प्रार्थना कि ईश्वर झूठे को अभिशप्त करे) तक का चैलेंज दिया, और अन्त पर फ़ैसले का यह न्यायोचित उपाय बताया कि सभी धर्मों का आधारभूत सिद्धांत निकाल कर देखो कि वह किस का समर्थक है। यहाँ -- 'हे धर्मग्रन्थ वालो' -- पद में संबोधन आम तौर पर यहूदियों और ईसाइयों की ओर माना गया है। परन्तु स्वयं *'सुहाबाह'*(हज़रत पैग़म्बर-श्री के सहवर्ती अनुयायिओं) ने इस पद के अन्तर्गत पारसियों को भी लाया है। उन्हों ने पारसियों के साथ यहूदियों और ईसाइयों जैसा ही व्यवहार किया। इसी लिये एक महावेता ने कहा है, कि मुसलमानों को मानव-इतिहास का बड़ा ही गहन परिचय था, जभी उन्हों ने पारसियों को भी *'अहले किताब'*(दिव्य ग्रन्थ-धारियों) में शामिल जाना। मैं कहता हूँ कि मुसलमानों का यह निर्णय इतिहास के अध्ययन का परिणाम न था, बल्कि यह घोषणा उन के गहन क़ुर्आनी अध्ययन की परिचायक थी। क़ुर्आन ने जब स्वयं यह घोषणा कर दी : اِنْ مِّنْ اُمَّةٍ اِلَّا خَلَا فِيْهَا نَذِيْرٌ

"कोई जाति, कोई राष्ट्र ऐसा नहीं कि जिस में हमारा भेजा हुआ सचेतकर्ता न आया हो"(35 : 24)।

इस मंगलमय घोषणा के बाद तो सारी ही जातियां और सारे ही राष्ट्र ***'अहले किताब'*** के अन्तर्गत आजाते हैं। इसी लिये फरमाया कि इन सारी जातियों, सारे राष्ट्रों के धर्मों का आधारभूत सिद्धांत लेलो, इस से यही साबित होगा :

"यह कि हम अल्लाह के सिवा किसी और की ***'इबादत'*** न करें।"

जब हम एक-एक कर समस्त धर्मों पर दृष्टि डालते हैं तो सचमुच यही मूलभूत सिद्धांत उन में समान रूप से विद्यमान मिलता है। बोद्धधर्म वह एकमात्र धर्म है जो (प्रत्यक्षत:) परमात्मा के अस्तित्व में आस्था नहीं रखता, ईसाई तीन ईश्वर मानते हैं, पारसी लोग दो ईश्वरों में विश्वास धरते हैं, हिन्दू लोग बहुदेववादी हैं, और मुसलमान केवल एक परमात्मा में आस्था रखते हैं। *इन सब में का सामान्य तत्व 'ईश्वर' में आस्था है।* संसार का कोई धर्म ऐसा नहीं जो प्रभु के अस्तित्व में विश्वास न रखता हो। हाँ, बोद्धधर्म को एक अपवाद माना जा सकता है। परन्तु धर्म की दृष्टि से देखा जाये तो मानना पड़ेगा कि यह गौतम बुद्ध की असल शिक्षा का ज्ञापक नहीं, उसकी शिक्षा का विकृत रूप है। क्योंकि धर्म का बुनियादी मक़सद प्रभु की उपासना है। एक न्यायपीठ(Bench of judges) को बठिा लो, इस में प्रत्येक धर्म का एक-एक प्रतिनिधि रख लो। फिर उसके सामने एक-एक कर सब धर्मों को पेश करो। अकेला बौद्धधर्म ही ऐसा होगा जो यह कहेगा कि परमात्मा कोई नहीं, अन्य सब प्रभु की सत्ता के क़ायल नज़र आयें गे। चाहिए तो यह था कि जो भी धर्म इस अदालत के सामने आता वह अपनी धारणा के पक्ष में कोई प्रमाण, कोई गवाही भी पेश करे। परन्तु इस मामले में अकेले बौद्धधर्म का यह दावा है कि परमात्मा कोई नहीं, किसी और की गवाही इस पक्ष में नहीं। ज़ाहिर है कि यह दावा आप से आप ख़ारिज हो जाएगा।

इस के बाद पारसी धर्म है, इस धर्म की सब से बड़ी गलती यह है कि वह दो सृष्टिकर्ताओं में आस्था रखता है। बुराई का अस्तित्व संसार में इतना व्यापक है कि कोई दिशा इस से ख़ाली नहीं, और प्रत्यक्षत: इसका सुधार होता भी नज़र नहीं आता। हाँ ! अगर कोई ऐसा इन्सान है

जिस ने बुराई का अस्तित्व ही मिटा दिया हो, तो वह हज़रत पैग़म्बर-श्री मुहम्मद (सल्ल.) का परम पावन व्यक्तित्व है। इतिहास साक्षी है कि आप ने अपने आविर्भाव के समय अरब वासियों को अधमतम अवस्था में पाया, आप के दिव्य प्रताप से यही लोग श्रेष्ठता के शिखर पर बिराजमान होगए। यह संपूर्ण मानव-इतिहास का एक ऐसा अद्भुत चमत्कार है कि जिसकी दूसरी मिसाल विद्यमान नहीं। परन्तु संसार में ऐसा महा मानव एक ही हुआ है, जिस ने बुराई के उन्मूलन में असाधारण सफलता प्राप्त की। पारसियों के सामने यह उदाहरण कहाँ था? उन्हों ने जब बुराई को इस तरह सर्वत्र व्यापक देखा, तो यह कल्पना कर ली कि बुराई का एक अलग स्रष्टा होगा। फलतः उन्हों ने यह धारणा बना ली कि सृष्टिकर्ता दो हैं --- एक नेकी का रचियता, और दूसरा बुराई का रचियता। कुर्आन शरीफ़ ने पारसियों की इस धारणा का खण्डन सैदांतिक स्तर पर किया है, फरमाया :

وَجَعَلَ الظُّلُمٰتِ وَالنُّوْرَ

"और उसी (अल्लाह) ने अँधकार और प्रकाश की रचना की"।

(6 : 1)

यहाँ साफ बता दिया कि अँधकार और प्रकाश, नेकी और बुराई ---- सब एक परमात्मा की रचना हैं। एक और स्थल पर क्या ही सुन्दर ढंग से इस धारणा का खण्डन किया है :

وَقَالَ اللّٰهُ لَا تَتَّخِذُوْٓا اِلٰهَيْنِ اثْنَيْنِ اِنَّمَا هُوَ اِلٰهٌ وَّاحِدٌ

"और अल्लाह ने कह दिया है : दो ईश्वर न बनाओ, वह अकेला ही ईश्वर है"(16 : 51)।

यह प्रश्न कि वे दो ईश्वर कौन हैं जिन से मना किया गया है? इसका उत्तर इस से पहले वाली आयत में दे दिया है :

اَوَلَمْ يَرَوْا اِلٰى مَا خَلَقَ اللّٰهُ مِنْ شَيْءٍ يَّتَفَيَّؤُا ظِلٰلُهٗ عَنِ الْيَمِيْنِ وَالشَّمَآئِلِ
سُجَّدًا لِّلّٰهِ وَهُمْ دٰخِرُوْنَ

"क्या वे हर उस वस्तु को नहीं देखते जो अल्लाह ने पैदा की है? उसकी परछाइयाँ भी दायें और बायें से ढलती रहती हैं --- अल्लाह की आज्ञा का पालन करते हुए, और वे पूर्णतया वशीभूत हैं"(16 : 48)।

यहाँ बता दिया कि जिस तरह वस्तुएं पूर्णतः अल्लाह के अधीन हैं, उसी तरह उनके साये भी अल्लाह के वशीभूत हैं। 'बुराई' को यहाँ छाया की उपमा प्रदान की गई है। इस प्रकार उस अवैज्ञानिक धारणा की ओर संकेत कर दिया जिसके अन्तर्गत 'बुराई' का एक अलग स्रष्टा मान लिया गया है।

आइये इस धारणा को भी उपरोक्त इन्सानी अदालत में पेश करके देखें। क्या कोई और धर्म भी है जो पारसियों की भांति यह विश्वास रखता हो कि परमेश्वर एक नहीं दो हैं? कोई भी नहीं। ज्ञात हुआ कि यह धारणा भी स्वभाविक नहीं, क्योंकि सभी अन्य धर्मों की मान्यता इस के विरुद्ध है। कोई भी नहीं जो इसका अनुमोदन कर सके। ऐसी परिस्थिति में पारसियों का यह दावा खारिज होने योग्य है। अब तीन ईश्वरों वाली धारणा को लें, इस धारणा का संसार में काफी प्रसार है। कुर्आन शरीफ ने इस धारणा का खंडन यों किया है :

وَلَا تَقُوْلُوْا ثَلٰثَةٌ اِنْتَهُوْا خَيْرًا لَّكُمْ اِنَّمَا اللّٰهُ اِلٰهٌ وَّاحِدٌ سُبْحٰنَهٗٓ اَنْ يَّكُوْنَ لَهٗ وَلَدٌ

"और यह मत कहो कि ईश्वर (एक नहीं) तीन हैं। बाज़ आजाओ, इसी में तुम्हारा भला है। अल्लाह तो बस अकेला ही परमेश्वर है। उसकी शान इस से बुलन्द है कि उस का कोई पुत्र हो"(4 : 171)।

इस आयत में ***'सुब्हानहू'*** शब्द प्रयुक्त हुआ है, जिस के माना हैं *'परमेश्वर समस्त त्रुटियों एवं अभावों से पाक है, उसको क्या ज़रूरत है कि किसी को अपना* ***'शरीक'****(साझी) बनाये।'।* यह त्रुटियों से रहित होने की चर्चा इस लिए की, कि तीन ईश्वरों में आस्था रखने का सहज निष्कर्ष यही निकलता है कि ईश्वर त्रुटिरहित नहीं। इस मत के अनुयायिओं की यही मान्यता है कि परमेश्वर के अन्दर न्याय तो है दयालुता नहीं। दयालुता के अभाव को उसने अपने पुत्र द्वारा पूर्ण किया। पुत्र ने प्रकट होकर पापियों का सारा पापदोष अपने ऊपर लेलिया, और इस तरह सब को पापमुक्त कर दिया। यह है वह धारणा जिस के अन्तर्गत परमेश्वर को पिता

के आसन पर आसीन किया जाता है। इस धारणा के लिये अनिवार्य है कि परमात्मा के सद्‌गुणों को अपूर्ण और त्रुटियुक्त माना जाये। ***'सुब्हानहू'*** शब्द में इस संपुर्ण धारणा का सतर्क खण्डन है। इस धारणा के पीछे एक कारण और भी है। वह यह कि इस मान्यता के जन्मदाताओं को गलती वासतव में बाज़ (आलंकारिक) शब्दों से लगी है। यह भी एक ऐतिहासिक तथ्य है कि वर्तमान इंजीलें (Gospels) हज़रत ईसा (अ.स.) के काफी समय बाद रची गईं, इसके बावजूद आज भी उन में ***'तौहीद'***(परमेश्वर के एकत्व) की चर्चा विद्यमान है। हज़रत ईसा (अ.स.) हमेशा आलंकारिक शैली में बातें किया करते थे (देखो मत्ती की इंजील, *13 : 10*), यही उनका सहज स्वभाव था। उन्हों ने अनेकशः ***'ईश्वर का पुत्र'*** शब्द प्रयुक्त किया है। परन्तु वे इस का क्या अर्थ लेते थे, इस बात को उन्हों ने स्वयं ही सुस्पष्ट कर दिया है, जैसा कि हम अभी दिखाएं गे।

एक अवसर पर हज़रत ईसा (अ.स.) ने यहूदियों को ***'शैतान के बेटे'*** कहा, वह इस लिये कि वे शैतानी कर्म करते थे। इस लिए नहीं कि वे साक्षात शैतान की सन्तान थे। हज़रत ईसा (अ.स.) ने स्वयं के लिये भी ***'ईश्वर का पुत्र'*** शब्द इस्तेमाल किया, क्या उन्हों ने ऐसा इस शब्द के वास्तविक अर्थ में कहा? बाइबिल की साक्षी इस के बिल्कुल प्रतिकूल है। क्योंकि उस में वह उपाय भी बताया गया है जिस के फलस्वरूप हम सब ईश्वर के पुत्र बन सकते हैं। उनके पहाड़ी वाले उपदेश का एक वाक्य यह भी है :

"धन्य हैं जो शांति की स्थापना करते हैं, क्योंकि वे ***'परमेश्वर के पुत्र'*** कहलाएं गे"(मत्ती *5 : 9*)।

पुनः कहते हैं :

"तुम ने सुना है कि कहा गया था, 'अपने पड़ोसी से प्रेम करना और अपने शत्रु से द्वेष रखना।' किन्तु मैं तुम से कहता हूँ : अपने शत्रुओं से प्रेम करो और अपने सतानेवालों के लिए प्रार्थना करो, जिससे तुम अपने पिता की, जो स्वर्ग में है, ***संतान*** बन सको "(मत्ती *5 : 43-44*)।

बाइबिल के इस उद्धरण से ज्ञात हुआ कि मनुष्य अपने शत्रु से प्रेम करके तथा उसके लिये प्रार्थना करके ***'ईश्वर का पुत्र'***(प्रेम पात्र) बन सकता है। क्योंकि ईश्वर दयालुता भले और बुरे में अन्तर नहीं करती, उसके उपकारों का द्वार समान रूप से सब केलिए खुला रहता है। वास्तव में ***ईश्वर का पुत्र*** बनने का मतलब यही है जिसको इस ***हदीस***-वाक्य में प्रतिपादित किया गया है : تخلقوا باخلاق الله

"अपने अन्दर अल्लाह के सद्गुण पैदा करो"(हदीस)।

यानि उस के रंग में रंग जाओ। इस मामले में हज़रत ईसा (अ.स.) की स्वयं अपनी सफाइ भी मौजूद है। एक बार यहूदियों ने उन्हें संगसार करने केलिये पत्थर उठाए, तो उन्हों ने फ़रमाया :

"यीशु ने उन्हें कहा, मैं ने पिता की और से अनेक कार्य तुम्हें दिखए, उन में से किस कार्य के लिए तुम मुझे पत्थरों से मारना चाहते हो? यहूदी धर्मगुरूओं ने कहा, अच्छे कार्य के लिए हम तुझे पत्थरों से नहीं मारना चाहते। वरन् परमेश्वर की निन्दा के लिये, क्योंकि तू मनुष्य होकर अपने आपको परमेश्वर बनाता है। यीशु ने उत्तर दिया, क्या तुम्हारी व्यवस्था में नहीं लिखा है, ***"मैं ने कहा कि तुम ईश्वर हो।"*** यदि उसने उनको ***ईश्वर*** कहा जिन के लिए परमेश्वर का वचन कहा गया (और धर्मशास्त्र का वचन टल नहीं सकता), तो जिसे पिता ने पवित्र ठहरा कर संसार में भेजा, उसे तुम कैसे कहते हो कि 'तू ईश्वर की निन्दा करता है, इस लिए कि मैं ने कहा"मैं परमेश्वर का पुत्र हूँ।"(यूहन्ना 10 : 32-36)

कोई भी बूद्धिमान इस का निष्कर्ष स्वयं निकाल सकता है, कि हज़रत ईसा ने अपने को किन मानों में 'ईश्वर का पुत्र' कहा। अगर तो अर्थ वही है जैसा उनके कथनों से परिलक्षित है, तो बात बिल्कुल साफ है। बाइबिल के पुराने नियम ***(तौरात)*** के अन्दर भी यह मुहावरा अनेकशः प्रयुक्त हुआ है। लेकिन जलदबाज़ लोगों ने अर्थ का अनार्थ कर दिया।

यह तो बाइबिल की गवाही है, इधर क़ुर्आन शरीफ में भी इस बात की पुष्टि मौजूद है। अगर नबी वाले सिद्धांत की तरह यह पुत्र वाला सिद्धांत भी कोई वास्तविक सिद्धात होता तो इसकी शिक्षा एक ही जाति

तक सीमित न होती। जो बात सत्य होती है उसकी गवाही सब देते हैं। इस सिद्धांत के पक्ष में भी कोई न कोई धर्म गवाही ज़रूर देता। पर ऐसा हुआ नहीं, फलतः यह दावा भी सुनवाई योग्य नहीं। अतः संपूर्ण धर्म-जगत् की ईश्वर संबंधी धारणाओं का सामान्य तत्वसार यही होगा :

"कि हम एक अल्लाह के सिवा और किसी की ***'इबादत'*** न करें"। तीन ईश्वर मानने वाले भी अन्ततः एक परमेश्वर में ही विश्वास धरते हैं। एक ईश्वर और तीन ईश्वर -- यह तो कोई जोड़ नहीं। फिर भी तीन के साथ एक की चर्चा ज़रूर करेंगे। इसी लिए तो ईसाइयों को कहना पड़ा कि धर्म के क्षेत्र में बुद्धि का कोई काम नहीं। यदि शुरू से तीन ही ईश्वर मान लेते तो इस विरोधोक्ति से बच जाते --- कि ईश्वर एक भी है और तीन भी। ऐसा क्यों? वह इस लिए कि मनुष्य का भीतरी प्रकाश या सहज स्वभाव (जिसे अंग्रजी में Human nature और अरबी में ***'फ़ित्रत'*** कहते हैं) वह उसका पीछा नहीं छोड़ता। इन्हों ने तीन को एक और एक को तीन मान कर यह सिद्ध कर दिया कि मानवीय शुद्ध स्वभाव की चिंगारी अभी तक उनके अंतःकरण में शेष है। बल्कि एक गरोह स्वयं उन्हीं के अन्दर ऐसा भी है जो तीन ईश्वरों में आस्था न रखकर केवल एक ईश्वर की सत्ता में विश्वास धरता है।[1] फिर बाइबिल के नये नियम (Gospels) में एक और

---

1. इस अवैज्ञानिक मान्यता के खिलाफ़ आवाज़ें भी उठने लगी हैं। चर्च आफ इंग्लैंड के एक प्रमुख बिशप Dr John Robinson(Bishop of Woolwich) अपनी पुस्तक Honest to God में साफ़ लिखते हैं : *यदि ईसाईमत को बचाना चाहते हो तो तुम्हें ईश्वर संबंधी अपनी धारणा बदलना होगी* । चर्च के ही एक और महानुभाव Dr Kenneth Cragg अपनी पुस्तक The Call of the Minaret में लिखते हैं, *कि ईसाई धर्म भी **एकेश्वरवाद** की शिक्षा देता है, रही बात **पुत्र** और **पवित्रात्मा** की, तो ये प्रभु के दो सद्गुण (Attributes) हैं जैसे **रहमान** और **रहीम** अल्लाह के।* यही दशा वैदिक बहुदेववादियों की है, लिखा है :*"They accepted all the different deities that were worshipped, but synthesised them as manifestations of **One Divinity**,*so that any one of them could be identified with any other or all the rest"(The Call of Vedas,by AC Bose).यही हालत त्रिमूर्ति वालों की है, लिखा है : " In the *Vishnu Purana* **the one only God**, Janardana, takes the designation of Brahma,Vishnu and Shiva......" (Hindu Religion and Ethics, by Dr Pushpendra K. Sharma, p. 65) -- अनुवादक

जगह यह शब्द भी आये हैं :

"इस प्रकार परमेश्वर का यह वचन पूरा हुआ जो उसने नबी य शायाह के माध्यम से कहा था : ***'मेरे सेवक को देखो, जिसे मैं ने चुना है, मेरा प्रिय जिससे मेरा मन प्रसन्न है'।***"(मत्ती 12 : 17-18) अरबी इंजील में ***'अब्दुन अन्अम्ना अलैहि'*** के शब्द मिलते हैं, 'यानि ***बन्दा*** जिस पर हम ने इनआम किया'। फिर यह शब्द --- 'जिस से मेरा मन प्रसन्न है', यह इस्लामी वाक्यांश ***'रज़ी अल्लाहु अन्हु'*** का अनुवाद है। इसके आगे यह शब्द मिलते हैं :

"मैं अपनी आत्मा उस पर डालूँगा।"

इधर कुर्आन शरीफ़ प्रभु का यह नियम प्रतिपादित करता है :

"वह आत्मा को अपनी आज्ञानुसार अपने बन्दों में से जिस पर चाहता है उतारता है, यानि उसको अपने संलाप का सौभाग्य प्रदान करता है"(40 : 15)।

बात कितनी साफ और सुस्पष्ट है। इन दिव्य वाक्यों में सर्वथा मानवीय उपलब्धियों की ही चर्चा है। तिस पर भी ईसाई लोग यही दुहाई देते हैं कि मुसलमान हज़रत ईसा (अ.स.) की इज़्ज़त नहीं करते। भला इस से बढ़कर किसी की इज़्ज़त और क्या होगी कि उसे ईश्वर का ऐसा प्रेम पात्र मान लिया जाए, जिसे ईश्वर के संलाप का सौभाग्य प्राप्त हो। इस वास्तविकता की गवाही पूर्वकालीन लोगों और विवेकशील ईसाइयों ने भी दी है। यही सत्य है। मक्का के बहुदेववादी काफिरों की यातनाओं से तंग आकर मुसलमान जब हबश देश की ओर ***'हिज्रत'*** कर गए, तो उस वक्त वहाँ का राजा नजाशी था, वह ईसाई धर्म का अनुयायी था। मक्का के काफिर मुसलमानों के पीछे हबश पहुँचे, और राजा से कहा कि इन लोगों को हमारे हवाले कर दो। तब राजा ने हज़रत जअफ़र (रज़.)[1] को बुलाया, जो ***'हिज्रत'*** करने वालों के संग वहाँ पहुँचे थे। राजा ने उन से सारा मामला पूछा, और फिर कुर्आन शरीफ़ में से कुछ पढ़कर सुनाने का आदेश दिया। हज़रत जअफ़र (रज़.) ने ***सूरः मरयम*** (कुर्आन शरीफ़ का

1. ***रज़ियल्लाहु अनहु*** (अल्लाह उस से राज़ी हुआ) का संक्षिप्त रूप -- अनुवादक

मरयम नामक अध्याय) का पाठ शुरु किया। इस *सूरत* (अध्याय) में हज़रत ईसा के जन्म की गाथा और उनके इन्सानी स्वरुप का चित्रण है। इस चित्रण के बखान के पश्चात् जब हज़रत जअफ़र (रज़.) इस आयत पर पहुँचे : ذَالِكَ عِيسَى ابْنُ مَرْيَمَ قَوْلَ الْحَقِّ الَّذِي فِيهِ يَمْتَرُونَ

"यह है मरयम के पुत्र ईसा (का वास्तविक स्वरुप) --- एक सच्ची गाथा, जिस के विषय में ये झगड़ते हैं।"*(19 : 34)*
तो राजा ने एक तिंका उठाया, और कहा :

"ईश्वर की सौगन्ध ईसा मसीह इस तिंके के बराबर भी इस से बढ़कर नहीं।"

तात्पर्य यह कि इस्लाम उसी मौलिक एवं स्वभाविक धर्म-शिक्षा का पुनर्प्रतिपादन करता है जो समस्त धर्मों में आज तक शेष है। इस्लाम ने समस्त धर्मों का एक सामान्य तत्वसार प्रस्तुत कर दिया, और सार भी ऐसा कि जो मानव-प्रकृति के बिल्कुल अनुकूल है। संसार के विभिन्न धर्मों का यदि कभी मिलन होगा, यदि कभी हिन्दू और ईसाई एक हो सकते हैं, तो केवल इस्लाम द्वारा प्रतिपादित सिद्धांतों के अन्तर्गत ही होंगे। हज़रत पैग़म्बर-श्री मुहम्मद (सल्ल.) को यह किस ने बताया कि वे समस्त धर्मों का एक ऐसा सामान्य तत्वसार निकाल कर रख जाएं, जो सब धर्मालिंबियों केलिये मान्य हो, और मानव-स्वभाव भी जिसका समर्थन करता हो। आज धर्मों की एकता के लिये प्रयास किए जाते हैं, और इस संदर्भ में नाना प्रकार के उपाय सुझाये जाते हैं। लेकिन कुर्आन शरीफ़ ने चौदह सौ वर्ष पर्व इसका अचूक उपाय पेश कर दिया था, और वह यह कि समस्त धर्मों का एक मूलभूत सामान्य तत्व खोज लो और इसी पर सब स्थिर हो जाओ। समस्त थर्मों के इसी मूलभूत सामान्य तत्वसार का नाम *'इस्लाम'* है।

एक मूलभूत सामान्य तत्व और भी है जो समान रुप से सारे धर्मों में पाया जाता है, और वह है *'दुआ'* या *'प्रार्थना'*। जिस प्रकार *'तौहीद'*(परमेश्वर का एकत्व) समस्त धर्मों का मूलभूत सामान्य तत्व है,

उसी प्रकार *'दुआ'* भी सभी धर्मों का एक और आधारभूत सामान्य तत्व है, सभी धर्मों ने इसे एकसमान मान्यता दे रखी है। और जब हम *'दुआ'* की फिलॉसफी (Philosophy) पर चिंतन-मनन करते हैं तो हमें इस तथ्य का सहज ही बोध हो जाता है कि इस्लाम ने जो सिद्धांत प्रस्तुत किये वे पूर्ण सत्य हैं। विभिन्न धर्मों के मौलिक सिद्धांतों पर विचार करें --- ईसाई कहता है कि मुक्ति का मात्र आधार हज़रत ईसा का *'कफ़्फ़ारा'* (atonement) है, हिन्दू का कहना है कि ईश्वर मनुष्य के पाप क्षमा करने में बिल्कुल असमर्थ है, अतः पापी को अपने पापों का दण्ड भोगने केलिए अनेक योनियों में से गुज़रना पड़ता है। इस्लाम ने इन सब में एक माध्मिक मार्ग पेश किया, और यह सुखद घोषणा की :

إِنَّ الْحَسَنَاتِ يُذْهِبْنَ السَّيِّئَاتِ

"निस्संदह नेकियाँ बुराइयों को दूर कर देती हैं"(*11 : 114*)। यानि जितना अधिक ग़लबा और प्रभुत्व नेकी का होगा उतना ही दमन मानवीय कुप्रवृत्ति का होगा। पाप के दुष्प्रभाव का निवारण पुण्य के सुप्रभाव से होजाता है।

आइये अब यह देखें कि विभिन्न धर्म *'दुआ'* के बारे में क्या द्धिांत प्रस्तुत करते हैं। ईसाई धर्म का मूलभूत सिद्धांत *'कफ़्फ़ारा'* है, उनकी मान्यता है कि *'कफ़्फ़ारा'* पर विश्वास लाने भर से मनुष्य पाप-मुक्त हो जाता है। किन्तु इस धारणा के बावजूद ईसाई लोग *'दुआ'* के महत्त्व के कायल हैं। आश्चर्य की बात तो यह है कि जो *'दुआ'* स्वयं हज़रत ईसा ने सिखलाई है वह ईसाइयो की *'कफ़्फ़ारा'* वाली धारणा की बंजक है :

"तुम इस प्रकार प्रार्थना किया करो, कि हे हमारे स्वर्गिक पिता, तेरा नाम पवित्र माना जाए, तेरा राज्य आए और जिस तरह हम ने अपने कर्ज़दारों को माफ़ किया है तू भी हमें माफ़ कर, और हमें परीक्षा में मत डाल वरन् बुराई से बचा। यदि तुम मनुष्यों के अपराध क्षमा करोगे तो तुम्हारा स्वर्गिक पिता तुम्हें क्षमा करेगा,परन्तु यदि तुम मनुष्यों के अपराध क्षमा नहीं करोगे, तो तुम्हारा पिता भी तुम्हारे अपराध क्षमा नहीं

करेगा"।(मत्ती 6 : 9-15)

इस *'दुआ'* ने फैसला कर दिया कि *'कफ़्फ़ारा'* की मान्यता हज़रत ईसा की शिक्षा नहीं, अन्यथा यह प्रार्थना ग़लत ठहरती है, क्योंकि दोनों में से एक ही बात सत्य हो सकती है। या तो यह प्रार्थना सत्य है और ***कफ़्फ़ारा*** का सिद्धांत असत्य, या फिर ***कफ़्फ़ारा*** की मान्यता ही सत्य है और प्रार्थना का सिद्धांत असत्य। साफ लिखा है कि जिस तरह हम अपने क़र्ज़दारों को माफ करते हैं तू भी हमारे क़र्ज़ हमें माफ कर। क्या हम अपने क़र्ज़दारों को इसी तरह माफ किया करते हैं कि क़र्ज़ उस से वापस लेलिया, और कहा जाओ तुम्हें माफ कर दिया। क्या क्षमा इसी का नाम है कि किसी चीज़ का बदला लेलिया और फिर कह दिया कि हम तुम्हें माफ करते हैं? नहीं, बल्कि हम तो अपराध या ऋण को इसी प्रकार माफ करते हैं, कि उसे छोड़ दें और कुछ भी न लें --- यही माफी, यही क्षमाभाव है। आश्चर्य है कि मनुष्य के भीतर वह सद्‌भाव बताया जाता जो परमेश्वर में नहीं। यदि ***कफ़्फ़ारा*** (Atonement) पर विश्वास लाने मात्र से मनुष्य के समस्त पाप धुल जाते हैं, तो फिर प्रार्थना का विधान किस लिए? क्षमायाचना किस चीज़ केलिए?

इसी प्रकार वेदों के अन्दर भी ऐसी अनेक प्रार्थनाएं हैं जो हिन्दुओं के *'आवागमन'* वाले आधारभूत सिद्धांत को ग़लत साबित करती हैं। उदाहरणतया, ऋग्वेद की यह प्रार्थना द्रष्टव्य है :

"अव द्रग्धानि पित्र्या स जानोऽव यावयं चक मा तनूभिः।
अव राजन्प ्रुत पं न तायुं स जावत्सं न दाम्नो वसि ठम्॥"
(म. 6, सू. 86, मंत्र 5)

"Free us from sins committed by our fathers, from those wherein we have ourselves offended.
O King, loose, like a thief who feeds the cattle, as from the cord a calf, set free Vasishtha." (Translation by Griffith)

"हम को हमारे पूर्वजों के पापों से मुक्ति दे, या जो हम ने अपने शरीर द्वारा किए हैं। हे राजन ! मुक्ति दे, रसी से बंधे हुए बछड़े के समान

वसिष्ठ चोर की भांति, कि जिस तरह वसिष्ठ ने रसी से बंधा हुआ बछड़ा छोड़ दिया, इसी तरह हम को पापों से मुक्त कर।"

(अनुवाद,मौलाना अब्दुल हक विद्यार्थी)

यह प्रार्थना वेदों में क्यों सिखाई गई, जबकि हिन्दू धर्म की यह मान्यता है कि ईश्वर किसी के पापों को क्षमा नहीं करसकता। प्रत्येक पापी के लिए अनिवार्य है कि वह अपने पापों की सज़ा भोगे। ऐसे में उस प्रभु से क्षमा की याचना करना, जो क्षमादान देने में बिल्कुल असमर्थ हो, एक व्यर्थ कर्म है। कोई बुद्धिमान कभी आग से न जलाने की प्रार्थना नहीं किया करता, कभी कोई पानी से यह नहीं कहता कि मुझे न भिगोइयो। अब यदि आवागमन का सिद्धांत सही है, तो ***दुआ*** का माँगना ऐसा ही है जैसे आग से न जलाने की प्रार्थना। वेदों में प्रार्थना का पाया जाना ही इस बात का सबूत है कि आवागमन की मान्यता ग़लत है। और फिर दुआ का सिद्धांत भी सभी धर्मों का सामान्य सिद्धांत है, जबकि आवागमन का समर्थक और कोई धर्म नहीं। अतः भलीभांति याद रखो कि इस मामले में भी इस्लाम ही की शिक्षा सत्य है। इस्लाम कहता है कि पाप क्षमा हो जाता है, परन्तु अपने कर्म से। जितना कोई नेकी की शक्ति को बढ़ाये गा, उतना ही पाप का असर निष्प्रभावित हो जाएगा।

कुआन शरीफ एक अन्य स्थल पर कहता है :

فَمَنْ يَّعْمَلْ مِثْقَالَ ذَرَّةٍ خَيْرًا يَّرَهٗ وَمَنْ يَّعْمَلْ مِثْقَالَ ذَرَّةٍ شَرًّا يَّرَهٗ

"और जो कोई कण-भर भलाई करेगा उसे देख लेगा। और जो कोई कण-भर बुराई करेगा उसे देख लेगा"। (*९९ : ७-८*)

प्रत्यक्षतः यह हिन्दू मान्यता का अनुमोदन है। अब जबकि एक जगह कह दिया --- *'नेकियाँ बुराइयों का दुष्प्रभाव दूर कर देती हैं'*, और दूसरी जगह कहा कि *'जैसा करो गे वैसा ही भरो गे'*। इन दोनों वाक्यों में परस्पर कोई विसंगति नहीं। यह तो ऐसी ही बात है जैसे कोई कहे -- *'व्यक्ति जो कुछ खायेगा उसी से प्रभावित होगा'* हाँ, इस से अधिक प्रभावशाली वस्तु

का सेवन कर लेगा तो पहले वाला प्रभाव समाप्त होजाये गा। अन्यत्र ये शब्द भी मिलते हैं : *हबितत् आमालुहुम्* यानि 'उन के कर्म व्यर्थ होगए।'(*18 : 105*), यह ऐसा ही है जैसे किसी ने विष खा लिया, वह तो मरेगा ही। इसी प्रकार कोई महा पाप का कर्ता बने तो उसकी सारी नेकियाँ व्यर्थ हो जाएंगी, इसी को कर्मों का व्यर्थ हो जाना कहते हैं। यह चन्द बातें में ने इस लिए कहीं ताकि आप को ज्ञात होजाए कि इस्लाम के सिद्धांत कितने मज़बूत, अटल और बुद्धिसंगत हैं। इस्लाम वह धर्म है जो आप से आप दुनिया में फेलता चला जाता है, इसे अपने प्रचार प्रसार के लिये किसी पेड मिशनरी (Paid missionary) की आवश्यकता नहीं। प्रत्यक मुसलमान बच्चे और बूढ़े का परम कर्तव्य है कि वह इसे दुनिया के चारों छोरों तक पहुंचाए। इस्लाम की कोई शिक्षा ऐसी नहीं कि जिस के लिए उसके अनुयायी को किसी के सामने लज्जित होना पड़े। बल्कि यह औरों को शरमिन्दा कर देती है। यह वह ख़ज़ाना है जो हर जगह तुम्हारे काम आएगा। हाँ ! दिलों के अन्दर एक विशालता की ज़रूरत है। इसी विशालता के अभाव के कारण आज एक घटिया और तुच्छ प्रयोजन के निमित्त कह दिया जाता है कि हमें अमुक व्यक्ति की अच्छी बात भी नहीं सुननी चाहिये। हालांकि हमें स्पष्ट आदेश था :

"बुद्धिमत्ता और विवेक की बात मुसलमान की खोई हुई पूंजी है, जहाँ से मिले लेले"।(हज़रत पैग़म्बर-श्री (सल्ल.) का कथन)

अतः दिलों में विशालता पैदा करो, अपने भाइयों के काम में उनके सहायक बनो, बाधा न बनो। हज़रत उमर (रज़.) के बारे में लिखा है कि उन्हों ने एक बार एक शराबी को एक आयत लिख कर भेजी :

غَافِرِ الذَّنْبِ وَقَابِلِ التَّوْبِ شَدِيدِ الْعِقَابِ ذِي الطَّوْلِ

"पापों को क्षमा करनेवाले, और तौबा को कबूल करनेवाले, कठोर दण्ड देनेवाले, अत्यन्त अनुग्रहशील (परमात्मा की ओर आ), उसके सिवा कोई ईश्वर नहीं"(*40 : 3*)।

इस आयत में क्षमा और माफ़ी के कितने वादे हैं, इसको पढ़ते ही उस

ने तौबा कर ली। हज़रत उमर ने फ़रमाया :

> 'किसी को बुरा काम करते देखो तो शैतान के सहायक न बनो, वह इस तरह कि कठोरता से पेश आ कर उसे पाप की ओर अधिक प्रेरित कर दो।'

परन्तु आज अपने भाइयों के अन्दर कोई क़सूर हो न हो उनकी नेक बातों को भी अपराध माना जाता है, और उन के नेक कार्यों में बाधाएं डाली जाती हैं। कभी इसी लाहौर शहर में यह सुझाव रखा गया कि (विश्वविख्यात इस्लामी धर्मप्रचारक) ***ख़्वाजा कमाल उद्दीन*** ग़लत इस्लाम पेश करता है। अत: ***ख़्वाजा कमाल उद्दीन*** के ख़िलाफ़ एक कमेटी बनाई जाए जो उसकी ग़लतियों को प्रकाशित कर लोगों को उसे चन्दा देने से रोक दे। काश! उस वक़्त यह ग़ैरत होती कि ऐसा करने से इस्लाम के मार्ग में ही बाधा उत्पन्न होगी। चलो कुछ देर केलिए मान लें कि ***ख़्वाजा कमाल उद्दीन*** ग़लत इस्लाम ही पेश करता है, तो करने दो। क्योंकि आख़िर वह लोगों को मुसलमान ही तो बनाता है। इस्लाम के मौलिक सिद्धांतों में तो कहीं कोई अन्तर नहीं। अन्य धर्मावलंबियों की और देखो, वहाँ तो मौलिक सिद्धांतों तक में एकमतता नहीं, लेकिन फिर भी वे एक दूसरे के सहायक हैं। फिर जिन लोगों में वह इस्लाम पेश करता है, उन्हें इन्हीं मौलिक सिद्धांतो पर क़ायम (स्थिर) करता है, ये वही सिद्धांत हैं जिन पर सभी एकमत हैं। अमौलिक बातों में मतभेद होता है तो हुआ करे। कुछ भी हो इस्लाम का सामाजिक कलेवर तो क़ायम ही रहता है, वही नमाज़, वही रोज़ा, वही हज्ज, वही ज़कात, कुछ भी तो नहीं बदलता। ख़्वाजा कमाल उद्दीन ने इस के विरुद्ध कोई बात नहीं कही। ***सुहाबा*** (हज़रत पैग़म्बर-श्री के सहवर्ती अनुयायिओं) को देखिये, वे हर समय इस खोज में रहते थे कि कौन सी बात ऐसी है जिस पर हमें अमल करना ज़रूरी है। उनको इन बारीकियों और ग़ैर-ज़रूरी बातों से कोई काम न था।

समाप्त

اَللّٰهُ لَآ اِلٰهَ اِلَّا هُوَۚ اَلۡحَیُّ الۡقَیُّوۡمُ ۚ

لَا تَاۡخُذُهٗ سِنَةٌ وَّلَا نَوۡمٌ ؕ لَهٗ مَا فِی السَّمٰوٰتِ

وَمَا فِی الۡاَرۡضِ ؕ مَنۡ ذَا الَّذِیۡ یَشۡفَعُ عِنۡدَهٗۤ

اِلَّا بِاِذۡنِهٖ ؕ یَعۡلَمُ مَا بَیۡنَ اَیۡدِیۡهِمۡ وَمَا خَلۡفَهُمۡ ۚ

وَلَا یُحِیۡطُوۡنَ بِشَیۡءٍ مِّنۡ عِلۡمِهٖۤ اِلَّا بِمَا شَآءَ ۚ

وَسِعَ كُرۡسِیُّهُ السَّمٰوٰتِ وَالۡاَرۡضَ ۚ

وَلَا یَـُٔوۡدُهٗ حِفۡظُهُمَا ۚ

وَهُوَ الۡعَلِیُّ الۡعَظِیۡمُ ﴿۲۵۵﴾

हमारे कुछ अन्य ख्यातिप्राप्त प्रकाशन

कुर्आन शरीफ़ की अंग्रेज़ी टीका

♦ "मौलाना मुहम्मद अली साहिब ने कुर्आन शरीफ़ का अंग्रजी में अनुवाद करके इस्लाम की जो महत्त्वपूर्ण सेवा की है उस की महत्ता को स्वीकार न करना मानो सूरज की रोशनी से इन्कार करना है। इस अनुवाद द्वारा न सिर्फ हज़ारों गैरमुस्लिमों ने इस्लाम के शीतल आँचल में शरण ली बल्कि हज़ारों मुसलमान भी इस्लाम के और अधिक निकट आगए। जहाँ तक मेरा अपना संबंध है मैं सहर्ष स्वीकार करता हूँ कि यह अनुवाद गिनती की उन चन्द किताबों में से है जो चौदाह पंद्राह साल पहले ,जब मैं नास्तिकता और अधर्म रूपी अँधाकरों की गहराइयों में भटक रहा था ,मेरे लिए मार्गदीप बन कर आई और मुझे इस्लाम का मार्ग दिखाया।"

(मौलाना अब्दुल माजिद दर्याबादी[रह] ,कुर्आन शरीफ़ के मशहूर टीकाकार)

♦ "यह कुर्आन शरीफ़ का अंग्रेज़ी भाषा में प्रमाणिकतम अनुवाद है ,इस में ज्ञानप्रज्ञान से भरे हुए फुटनोट दर्ज हैं।"

(मौलाना मुहम्मद अली "जौहर" आफ़ ख़िलाफत मूवमेंट)

कुर्आन शरीफ़ की विश्वकोशीय उर्दू तफ़सीर (टीका)

♦ "(मौलाना मुहम्मद अली साहिब[रह] का) यह अनुवाद साम्प्रदायिक मान्यताओं की अभिव्यक्ति से लगभग रिक्त है ,मौलाना साहिब ने बड़ी सावधानी से अनुवादक की भूमिका निभाई है .... उन्हों ने यह अनुवाद बड़ी श्रद्धा और आम जनमत को दृष्टि में रखते हुए किया है।"

(डा. सालिहा अब्दुल्हकीम शरफ उद्दीन की कृति *'कुर्आन हकीम के उर्दू तराजिम'*)

♦ "यह इतनी उच्च कोटि की तफ़सीर है कि शायद उर्दू भाषा का साहित्य रूपी ख़ज़ाना ऐसे कांतिमान रत्न दुर्लभता से भी न निकाल सके।" (मौलाना ज़फर अली खाँ[रह] ,संपादक अखबार *'ज़मीनदार'* लाहौर)

हदीस सार (**Manual of Hadith**)

♦ ".....इस तरह इस के विभिन्न अध्यायों में वे सारी हदीसें (और आयतें) आ गई हैं जिन की एक मुसलमान को अपने दैनिक जीवन में आवश्यकता पड़ सकती है ...... यह इतना बड़ा महाकार्य है जो एक *'अहमदी'* के हाथों सम्पन्न हुआ ,इस श्रेष्ठ कृति की नुकताचीनी या छिद्रान्वेषण कोरी मूर्खता है।" (मौलाना अब्दुल माजिद दर्याबादी[रह])